1183

सोमसी

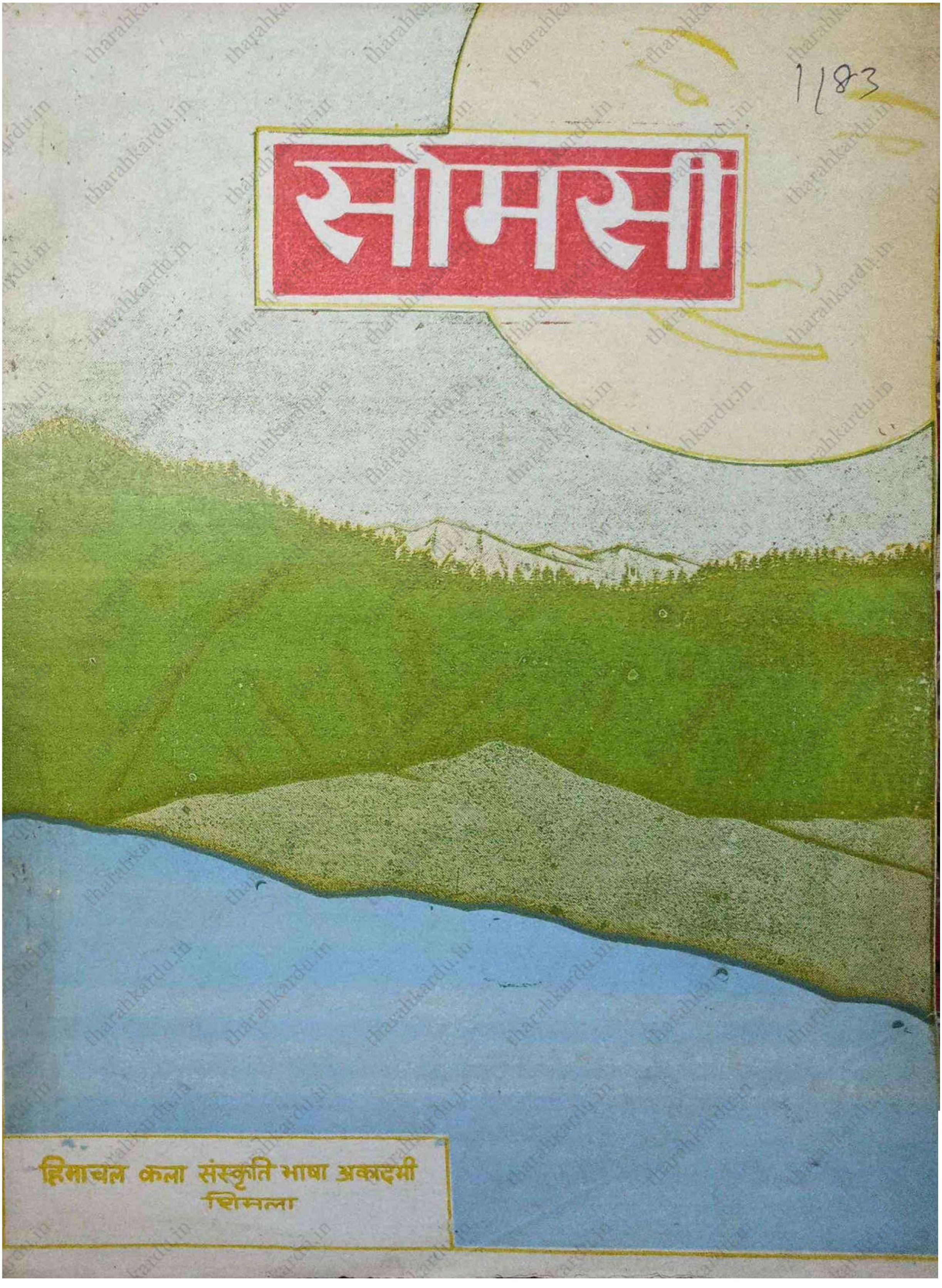

हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी
शिमला

सोमसी

हिमाचल कला-संस्कृति भाषा अकादमी
की त्रैमासिक पत्रिका

वर्ष 9	जनवरी, 1983	अंक 1
मुख्य सम्पादक, अध्यक्ष अकादमी, **सन्त राम शर्मा** सम्पादक **मौलूराम ठाकुर** उप-सम्पादक **रमाकान्त जोशी** अनुसंधान अधिकारी आवरण **ओमप्रकाश**	३३	जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्तूबर में प्रकाश्य लेखक के विचारों तथा दिए गए तथ्यों से सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं ।

वार्षिक चन्दा १२ रुपये **एक प्रति ३ रुपये**

प्राप्ति स्थान :

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी

क्लिफ एण्ड एस्टेट, शिमला--१७१००१

विषयानुक्रमणिका

क्रमांक	लेख	लेखक	पृष्ठ
१.	चुगदा चुगेन्दा हिरणू	डॉ० ब्रह्मदत्त शर्मा	१
२.	पहाड़ी मुहावरे एक विवेचन	डॉ० लेखराम शर्मा	५
३.	भारतीय दर्शन में मोक्ष की परिकल्पना	डॉ० वासुदेव प्रशान्त	१५
४.	संस्कृत तथा भाषा विज्ञान	डॉ० मन्त्रिणी प्रसाद	२४
५.	कांगड़ा में प्रचलित श्रीकृष्ण का झेड़ा	श्री योगेन्द्र सिंह तूर	३२
६.	परिचय डॉ० शर्मी शर्मा		३९
७.	सूर और तुलसी की जीवन दृष्टि का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ० शमी शर्मा	४०
८.	फिर वही परोसा गया	श्री तुलसी रमण	४६
९.	दशुठण	श्री बालक राम जसवाल	५०
१०.	कांगड़ी लोक गीतों में छमाहड़ी	श्री हरिकृष्ण मुरारी	५३
११.	सादटू	विद्यानन्द सरैक	५९
१२.	स्याणे रा गलाणा	श्री दीनानाथ गौतम शास्त्री	६२
१३.	ऊपरी महासु क्षेत्र में बिशु का त्योहार	श्री पन्ना लाल जोगटा	६८
१४.	महर्षि जमदग्नि के आश्रम नुमा मलाणा गांव में आदिवासी जन जीवन	श्री तेज राम ठाकुर	७२
१५.	पी. एच. डी. उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध की संक्षिप्त रूपरेखा	सुशील कुमार फुल्ल	७८
१६.	पुस्तक समीक्षा	श्री कृष्ण चन्द्र शर्मा	९१

सम्पादकीय

हिमाचल प्रदेश में जात्रा का विशेष महत्त्व है। परन्तु यहां जात्रा से अभिप्राय ठीक उस जात्रा से नहीं है जो बंगाल और बिहार आदि क्षेत्रों में लोक नाट्यों का एक विशिष्ट उदाहरण है। हिमाचल की जात्रा में बंगाल और बिहार की जात्रा की तरह अभिनय और संवाद का उत्कृष्ट समावेश तो नहीं मिलता, परन्तु यहां जात्रा का संस्कृत साहित्य की यात्रा से बहुत निकट का सम्बन्ध है। प्राचीन साहित्य के अनुसार लोकानुरंजन उत्सवों में रथ यात्रा का विशेष महत्त्व था। चीनी यात्री फाहियान ने पांचवी शताब्दी के प्रारम्भिक काल में अनेक उत्सवों का उल्लेख किया है जिसमें रथयात्रा उत्सवों का विशेष महत्व बताया गया है। बौद्ध धर्म के अनुयाइयों ने धर्म को लोकप्रिय बनाने के लिए देश-विदेश में अनेक उत्सवों का आश्रय लिया था। रथयात्रा का उत्सव ऐसी ही परम्परा थी जिसका निर्वाह उन दिनों खोतान और पाटलिपुत्र आदि क्षेत्रों में बड़ी धूम-धाम से किया जाता था। इन्हीं उत्सव यात्राओं के मूलाधार पर बंगाल और बिहार के यात्रा लोक-नाट्यों का विकास हुआ है। डॉ० श्याम परमार के अनुसार उन दिनों भक्तगण अपने अराध्य की उपासना के हेतु प्रारम्भ में कीर्तन करते थे और नाचते गाते किसी विशिष्ट स्थान तक पहुंचा करते थे। आज भी मन्दिर अथवा देव-स्थानों तक भक्त मण्डलियां अपने उपास्य की लीलाएं करती हुई गांव या नगरों के मार्ग से जाया करती है।

हिमाचल प्रदेश में जात्राओं का स्वरूप ठीक इसी तरह का है। प्राचीन साहित्य के अनुसार यात्रा अथवा जात्रा का जो प्रारम्भिक स्वरूप था हिमाचल प्रदेश में वही रूप आज की जात्राओं में देखा जा सकता है। हिमाचल के अनेक स्थानों पर देवताओं के उपासक देवताओं के रथ को कन्धों पर उठा कर नचाते हैं और स्वयं भी नाचते हैं। देवता के मोहरों या मूर्तियों को रथ या पालकी में सजाकर बाजे-गाजे के साथ एक स्थान से दूसरे को ले जाया जाता है। शिमला जिला की ठियोग तहसील के कुठाण गांव का डोमेश्वर देवता जात्रा के लिए दिल्ली तक जाता है। अपने स्थाई मन्दिर तक आते जाते आरम्भ में जहां-जहां देवता ने पत्थर स्थापित किए थे, वे उसके अधिकार क्षेत्र में हैं। उनके स्थानों पर डोमेश्वर देवता विशेष नृत्य-अभिनय करता है। कालका के निकट 'शुआ, गांव देवता का प्रमुख पत्थर स्थान हैं। यदि किन्हीं कारण दिल्ली न गया तो देवता समय समय पर शुआ स्थान तक अवश्य जाता है। इस जात्रा भ्रमण से वापिस आकर कुठाण में एक महान् यज्ञ होता है जिसे भड़ात्रा कहते हैं। इसमें पड़ौस के देवता और हजारों लोग भाग लेते हैं।

लाहुल क्षेत्र का प्रसिद्ध देवता घेपन कई दिनों की पैदल यात्रा करता हुआ मलाणा के देवता जमदग्नि से मिलने आता है। घेपन का मन्दिर लाहुल की चन्द्रघाटी में सिसू गांव के निकट है और कुल्लू में जमदग्नि से मिलने के लिए रोहतांग और चन्द्रखणी की दो ऊंची-ऊंची पर्वत श्रृंखलाएं पार करनी होती है। ऐसे ही, नगर की देवी त्रिपुड़ा सुन्दरी भी विशेष अवसरों पर मलाणा के जमदग्नि से मिलने जाया करती है। जात्रा उत्सवों में कोटखाई के देवता बोइन्द्रा की यात्रा बहुत प्रसिद्ध है। जब कभी कोई प्रतिकूल परिस्थितियां पैदा हो

जाती है या उसके क्षेत्र में कोई भारी आपत्ति आती है तो देवता बोंइन्द्रा, केदारनाथ, बद्रीनाथ तथा हरिद्वार आदि के तीर्थों की यात्रा के लिए जाता हैं। उसके साथ पड़ौस के अनेक अन्य छोटे देवता भी यात्रा में शामिल होते हैं। ऐसी यात्राएं आरम्भ करने से पूर्व देवता के लोग पहले अपने घरों, वस्त्रों, आभूषणों और अपनी सफाई करते हैं। घरों को लीपा-पोता जाता है। सारे कपड़े-गहनों को धोया जाता है। देवता के रथ को नहलाया जाता है और उसके बाद देवताओं के रथ को नए कपड़ो, हारों, मोहरों से सजाकर यात्रा पर प्रस्थान किया जाता है।

प्रदेश के ऐसे अनेक अन्य देवता एक दूसरे से मिलने या तीर्थ पर जाने के लिए यात्राएं सम्पन्न करते हैं। ऐसी यात्राओं के दौरान अनेक तरह के विधि-विधान पूरे किए जाते हैं। अकादमी द्वारा सम्पादित की जारी देव-गाथा-खण्ड पुस्तक में ऐसे यात्राओं को विशेष स्थान दिया जाना प्रस्तावित है। पाठकों से अनुरोध है कि ऐसी देव यात्राओं का पूरा विवरण भेजकर इस कार्य के सफल आयोजन में अपना अमूल्य योगदान देकर कृतार्थ करें।

एम० आर० ठाकुर।

चुगदा चुगेन्दा हिरणू

डॉ० ब्रह्म दत्त शर्मा

कांगड़ी बोली के विभिन्न लोक गीतों में चुगदा 'चुगेन्दा हिरणू जे बोलदा' नामक गीत का भावात्मक एवं मार्मिक दृष्टि से अपना विशिष्ट महत्त्व है। प्रत्येक गीत के पीछे कोई न कोई घटना होती है। इस गीत का सम्बन्ध भी एक घटना से है। यह घटना राजा भर्तृहरि के जीवन में घटित हुई थी। सर्व प्रथम यहां पर राजा भर्तृहरि के जीवन के विषय में जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। राजा भर्तृहरि को वैराग्य पंथ का प्रवर्तक माना जाता है। भर्तृहरि भी दो हुए हैं, एक राजा भर्तृहरि थे जो सातवीं शताब्दी में हुए और दुसरे गुरू गोरखनाथ द्वारा दीक्षित दसवीं शताब्दी में अवतरित हुए। इसमें विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं। कुछ विद्वान् तो इन्हें तीन शतकों-शृंगार शतक, नीति शतक एवं वैराग्य शतक का प्रणेता मानते हैं तो कुछ अन्य इन्हें इनसे पृथक मानते हैं। सातवीं शताब्दी वाले भर्तृहरि का उल्लेख एक चीनी यात्री इत्सिग ने भी किया है, जो सात बार बौद्ध भिक्षु बनकर गृहस्थी बन गया था। इससे यह बात भली-भान्ति स्पष्ट हो जाती है कि इत्सिग का भर्तृहरि सातवीं शताब्दी का था और उसने उक्त तीनों शतकों की रचना की थी। किन्तु जहां तक उक्त लोक गीत से सम्बन्ध रखने वाले भर्तृहरि की बात है, वह इससे पृथक कोई और था जो उससे परवर्ती काल में हुआ जिसका जीवन काल दसवीं शताब्दी के पश्चात माना जाता है।

दसवीं शताब्दी वाला भर्तृहरि उज्जैन का राजा था जो कालान्तर में गुरु गोरखनाथ का शिष्य बना। राजा भर्तृहरि के जीवन में एक प्रमुख घटना घटित हुई जो इस प्रकार से है:- एक बार वे मृग का आखेट कर अपने महलों को वापिस आ रहे थे। जंगल में मृगियों ने मृग के वियोग में नाना प्रकार से विलाप करना आरम्भ कर दिया। राजा भर्तृहरि उनको देखकर चिन्ता में पड़ गए और सोचने लगे कि मैंने मृग को मारकर एक बहुत बड़ा पाप किया है। मन ही मन में सोचने लगे कि मृतक मृग को कैसे जीवनदान दिया जाए। संयोगवश उनकी भेंट रास्ते में गुरु गोरखनाथ से हो गई। उन्होंने गुरु गोरख नाथ को अपनी समस्या से अवगत करवाया। गुरु गोरख नाथ ने एक शर्त भर्तृहरि के सामने रखी। शर्त थी...भर्तृहरि उनका शिष्य बन जाए यदि शर्त स्वीकार हो तो मृग को जीवित किया जा सकता है। भर्तृहरि ने गुरु की शर्त को

स्वीकार कर लिया। गोरख नाथ ने मृतक मृग पर अबीर एवं कुंकम बिखेरा और मृग जीवित दौड़ता हुआ अपने मृगों के झुंड में जा मिला। राजा भर्तृहरि को अपने दिए गए वचनानुसार गुरु गोरख नाथ का शिष्य बनना पड़ा।

इसी घटना पर आधारित एक लोक गीत प्रचलित है जिसका भाव-अर्थ इस प्रकार है:- सोलह सौ घोड़ों पर राजा ने जीन कस ली और वे अपने साथियों के साथ शिकार करने के लिए जंगल की ओर चल पड़े . उन्होंने आखेट हेतु एक-एक खण्ड खोज किया किन्तु कहीं भी उन्हें मृगों का झुण्ड नहीं मिला। अन्ततः उनको मृग के साथ एक मृगियों का झुण्ड दिखाई दिया। राजा भर्तृहरि की रानी पिंगला ने उनसे प्रार्थना की कि राजा तुम मृग पर वार न करना क्योंकि इस मृग रूपी नर की सत्रह सौ नारियाँ हैं। राजा ने रानी की प्रार्थना पर ध्यान न देकर अपने भाले से मृग को मारा। मृग घायल होकर धरती पर गिर पड़ा, उसकी आत्मा छटपटाने लगी तड़फता हुआ मृग राजा से प्रार्थना करता है कि मेरे मरने के बाद मेरे सींग किसी सिंगी नाथ को देना जो दूर-दूर तक अपनी नाद को बजावे, आंखें किसी सुन्दर स्त्री को देना, खाल किसी पण्डित को देना जो उस पर बैठकर भक्ति करे, और मट्टी किसी राजा को देना इस प्रकार अपनी अन्तिम इच्छा व्यक्त करने के पश्चात् उसने अपने प्राण छोड़ दिए। राजा ने मृग के मृतक शरीर को घोड़े पर रख लिया और अपने महलों की ओर प्रस्थान किया।

रास्ते में उसे गुरु गोरख नाथ मिल गए, गोरख नाथ ने राजा भर्तृहरि से कहा कि तुमने इस भोले मृग को क्यों मारा ? राजा भर्तृहरि का मन द्रवित हो उठा और असने गुरु गोरख नाथ से उसे पुनः जीवित करने को कहा और अन्त में वह उनका शिष्य बन गया।

उक्त घटना पर आधारित गीत काँगड़ी बोली में इस प्रकार से प्रचलित है :—

चुगदा चुगेन्दा हिरणू जे बोलदा,
मीयां हेड़िया वो।
सींगां तां तू किसी साधे जो देया,
साधे संते जो दियां,
जेहड़ा दूर - दूर बजावे नाद,
मीयां हेड़िया वो।

अक्खीं तां मेरियां कुसी रानियां जो दियां,
माहांरानियां जो दियां,
जिहड़ी रक्खे डब्बिहां पाई के,
मीयां हेड़िया वो ।
लती तां मेरियां कुस्सी घोड़े जो दियां,
घोड़े बांके जो दियां,
जिहड़ा रण बिच पावे जीत,
मीयां हेड़िया वो ।

भर्तृहरि उज्जेन के निवासी थे। इनके पिता का नाम चन्द्रसेन था जो इन्द्रसेन का पुत्र बताया जाता है। प्रायः उनके विषय में यह भी कहा जाता है कि वैराग्य लेने से पूर्व वे अपने ससुराल के घर में आ गए थे। उनके ससुराल पंजाब या हिमाचल में बताए जाते हैं। जैसा कि पिछे उल्लेख किया जा चुका है कि उनकी आखेट के समय जंगल में गुरु गोरख नाथ से भेंट हुई थी। काँगड़ी बोली में उनका उक्त लोक गीत इस बात का द्योतक है कि राजा भर्तृहरि आखेट करने के लिए काँगड़े जिले के जंगलों में आया करते थे। इसी प्रकार काँगड़ी बोली में एक और लोक गीत भी है इसका सम्बन्ध भी राजा भर्तृहरि से जोड़ा जाता है। कुछ एक पंक्तियां यहां द्रष्टव्य है :-

राजे बिना कोई राजा जे झूरे,
वैद बिना कोई रोगी ओ ।
कंत बिना कोई नार जे झूरे,
फिरदे तीनां वियोगी ओ ॥

उपर्युक्त गीत से यह द्योतक है कि भर्तृहरि का कांगड़े के जंगलों से शिकार खेलने के रूप में सम्बन्ध रहा है। राजा भर्तृहरि द्वारा गुरु गोरख नाथ का शिष्यत्व ग्रहण किया था। गुरु गोरख नाथ का तो कांगड़ा से अटूट सम्बन्ध रहा है। ज्वाला मुखी मन्दिर की 'गोरख डिब्बी'

इसका स्पष्ट प्रमाण है। परन्तु इस गीत का मुख्य उद्देश्य हिरणू की मार्मिक व्यथा-कथा को कहना है। इस गीत में हिरणू की उदान्त भावनाएँ भी सर्वथा प्रशंसनीय हैं। काँगड़ा में यह गीत अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

अध्यक्ष
यशपाल साहित्य परिषद,
नदौण (हमीरपुर)

पहाड़ी मुहावरे : एक विवेचन

डॉ० लेख राम शर्मा

पहाड़ी मुहावरों के सम्बन्ध में मेरा एक लेख सोमसी (जुलाई, 1979) में प्रकाशित हुआ था जिसमें ऐसे मुहावरों के सम्बन्ध में चर्चा की थी जिनकी पृष्टभूमि में निहित कहानी ज्ञात हो सकी है जैसे 'रात बोगली दोत फेरी जगातखाने' आदि ।

इसी लेख में उन मुहावरों पर भी विचार किया गया था जो संस्कृत ग्रन्थों से तब से ही पहाड़ी में आ गए हैं जब से बोलचाल की भाषा संस्कृत से विकृत रूप में ये बोलियां प्रादुर्भूत हुई हैं, यथा :- चोरा रिया नीतुरिया पट्ठे तां खाणे ही ए (विषयाद विषयान्तरं गत्ता प्रचरत्येव यथा हृताऽपि गौः सौन्दरनन्द 8.41), तिस जे करनी तिस ही मरदी (नान्यः कर्तुः फलं राजन्नुपं- भुंक्ते कदाचन, महाभारत, आदिपर्व 28.13) पुत्त कुपुत्त होई जान्दे बब्ब कुबब्ब नी हुन्दे (कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुपिता न भवति) आदि ।

प्रस्तुत सन्दर्भ में उन मुहावरों पर बिमर्श किया जा रहा है जो किसी सर्बमान्य सत्य व अनुभव पर आधारित हैं या जिनकी पृष्टभूमि की घटना काल्पनिक है ।

1. आगे-आगे दौड़ पिच्छे-2 चौड़

   ऐसी उन्नति जिसमें साथ-साथ अवनति भी होती रहे ।

2. अन्नी पीन्घी, कुत्ते चट्टदे

   अन्धेर गर्दी ।

3. अपणे मंजे हेठ सोठू फेरना

   स्वयं को टटोलना या सुधारना ।

4. आप गल्न्दया बाह्मणा तैं जजमान भी गालया

   ऐसा व्यक्ति जिसकी कार्यपद्धति साथियों को भी ले डूबे ।

5. अहारे घटया तां भी मुआं व्यॉरे घटया तां भी मुआ

जब व्यक्ति के अपेक्षित आहार में कमी आ जाती तो उसे मरणासन्न ही समझना चाहिए तथा जो व्यक्ति व्यवहार (सामाजिक वर्ताव) में कमी ले आता है उसे सामाजिक तौर पर मृत ही समझना चाहिए ।

6. (क) इक्को हत्था खड़्चा [1] कनें दूजे औली [2]

एक हाथ में आग लगाने की सामग्री तथा दूसरे में बुझाने की । (इसका प्रयोग ऐसे व्यक्तियों के लिए किया जाता है जो स्वयं दूसरों को लड़ा कर अशान्ति पैदा कर देते हैं तथा बाह्य तौर पर अपने आप को निर्लेप सिद्ध करने के लिए उन्हें शान्ति बनाए रखने का निवेदन करते हैं ।)

6. (ख) उजक्यां जो बान्दरी टुकड़्यां जो झोली

परिश्रम कोई करे तथा उसके लाभांश का उपभोग कोई अन्य करे । (इस मुहावरे का आधार मदारी का खेल है जिसमें परिश्रम बानरी को करना पड़ता है मदारी की चोटें उसे खानी पड़ती है तथा 'पारिश्रमिक' झोली में डाला जाता हैं ।)

7. ऊंटा रे मुंहां जीरा

पूर्ण आहार या अपेक्षित सामग्री से कहीं कम होना ।

8. ऐड़ा [3] ते बाहर गडरिया बकरिया जो बाघ ही खान्दा

जो व्यक्ति अपने समाज व उसकी परम्पराओं के विपरीत चलता हैं उसका दुरन्त ही होता है ।

9. कत्तक किणया, इक्क-2 रोटी दुंई जैंणया

यह कृषि सम्बन्धी लोकोक्ति है, इसके अनुसार यदि कार्तिक महिने में बूंदाबांदी हो जाए तो आकाल पड़ता है या गेहूं की पैदावार बहुत कम होती है । दो

---

[1] आग प्रज्वलित करने का साधनभूत घास फूस आदि ।

[2] घड़े से कुछ छोट मिट्टी का बना पानी का वर्तन जिससे पानी धारा में निकलता है ।

[3] 'ऐड' शब्द संस्कृत के 'एड' शब्द की पहाड़ी में भाववाचक संज्ञा है जिसका अर्थ भेड़ बकरियों का सभूह होता है । भेड़ बकरियां प्रायः झुंड में चलती हैं, झुण्ड से अकेली चली हुई भेड़ बकरी को बहुधा बाघ या गीदड़ आदि खा लेते हैं ।

आदमियों के हिस्से एक ही रोटी आती। इसका कारण यह है कि कार्तिक में बूंदाबांदी होने से सर्दियों में वर्षा विलम्ब से होती है जिसका गेहूं पर असर पड़ता है। अतः अपेक्षा की जाती है कि या तो इस महिने जौर की वर्षा हो या फिर बिलकुल न हो ताकि सर्दियों में जल्दि वर्षा हो सके।

10. कद्दूएं रिया बेली तूम्बड़ा

अच्छे खानदान में कुपुत्र का पैदा होना, वंशानुकूल सन्तान न होना।

11. कणक खेता कुड़ी पेटा आ जवाईयां तू मण्डे खा

अनिश्चित भविष्य के गर्भ में विद्यमान वस्तु को लक्ष्य में रख कर व्यर्थ की डींगें हांकना, या असम्भव कल्पना करना।

12. कदीं तां सैहल आमले हेठ आई रैंहगी

कभी न कभी दाव लगना। (सैहल-साही को मारना बड़ा कठिन होता है किन्तु इसके सिर मामूली सी चोट भी लग जाए तो यह मर जाती है। अतः जब कभी यह स्वाभाविक गति से आंवले के नीचे जाती है तो कई बार आंवला पड़ने से मर जाती है।) यह मुहावरा हाथ न लगने वाले दुष्टों के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

13. कन्धा कोलां जो पचाके देणा

बहाने बनाना।

14 कंहनां पर जुंगड़ा घरां जो हक्कां

सामने विद्यमान वस्तु को मतिभ्रमवश इधर उधर ढूंडना, जैसे जुआ तो किसी व्यक्ति के कन्धे पर हो और वह उसके लिए आवाजें घर की लगा रहा हो।

15 करदे ने नीं करे तिसरा भी झुंगा जले

जैसे को तैसा। [झुंगा (घर) जलना क्रिया में उलाहना भी है वास्तविकता भी, क्योंकि यदि दुराचारी की हिंसक गतिविधियों का उत्तर न दिया जाए तो वह दूसरों को मिट्टी में मिला दे।

16. खाद्या खाण कुखाण तिस्सते भुक्खे भले
कित्ता संग कुसंग तिस्सते कल्ले भले

बुरा भोजन करने की अपेक्षा भूखे रहना उचित है तथा कुसंग में चलने से अकेले चलना ठीक है।

17. खान्दया खाण न मंज्या बाण

अत्यन्त निर्धन होना ।

18. गोह गिज्जी आमलयां फेरी किती खावे त्यामलां

उच्च पद पाकर वास्तविकता या निजी परम्पराओं को भूल जाना । गोह-(गोधा) त्यामल (एक प्रकार का फल) खाती है जब उसे आंवले मिल जाते हैं तब वह 'त्यामलों' का नाम तक नहीं लेती है जो कि आंवलों से कुछ घटिया होते हैं ।)

19. गोहा ने मिली गोह तेड़ी ओह तेड़ी ओह

घटिया आदमियों में मिलकर स्वयं भी घटिया हो जाना ।

20. घरे नीं भुज्जो बड़ियां जगरनाथा (जगन्नाथ धाम) रीयां अड़ियां

अपने साधनों व सम्पत्ति से परे के कार्यों को करने की सोचना ।

21. चन्दे रे पन्द्रा भोले रे सोला

झूठा या हेरा फेरी करने वाला आदमी अन्ततः असफलता का मुंह देखता है जबकि सचाई पर रहने वाला सफलता का ।

22. चली अप्पू ते नीं होए फटेऊं गोड्या रा

अपनी असफलता का स्वयं ही कारण होकर भी उसे परिवार या दूसरों के सिर मढ़ना ।

23. चिक्क मठ्याने री कुड़ी खाने री

सूझ बूझ से कार्य करना कहा जाता है कि मिट्टी मठ्याने (मिट्टी का विशेष स्थान) से लानी चाहिए तथा लड़की अच्छे घर की विवाहनी चाहिए ।

24. छिंजां किस घुलाणियां एह तां पीरा रा मन बधाणा

झूठे आश्वासन या प्रलोभन देना (कहा जाता है कि कोई व्यक्ति किसी संकट में फंस गया, वह संकट मुक्ति के लिए 'सुखना' करने लग गया । सुखना करते-२ वह इतनी राशि की छिंज (कुश्ती प्रतियोगिता, दंगल) की सुखना कर बैठा जितनी कि राशि जुटाने में वह सर्वथा असमर्थ था । तब किसी ने पूछा कि क्या तू इतना धन खर्च भी कर सकता है? तो उसने प्रत्युत्तर दिया- छिंजां किस.

25. जलदे घरा री बगड़ बौंकरी ही सही

किसी वस्तु के सर्वनाश की स्थिति में उसका कुछ भी हाथ लगने की कामना करना, जैसे जल रहे घर से यदि बुहारी बगैरा ही हाथ लग जाए तो वे भी अच्छे हैं।

26. जागदयां रियां कट्टियां सुत्त् रयां रे कट्टू

सचेत व सतर्क रहने से सब काम सफल हो जाते हैं, (कहा जाता है कि दो परिवारों की भैंसें प्रसूता हुई एक ने कट्टी-स्त्रीलिंग बच्चा दिया तथा दूसरी ने कट्टू-पुलिंग। कट्टी वाली भैंस वाला सोया हुआ था जबकि दूसरा जागृत था। जागने वाले ने झट से बच्चों को बदल कर कट्टी स्वयं ले ली तभी कहा जाता है जागदयां रियां कट्टिया ... ...

27. जिन्हा रे घरे दाणे तिन्हा रे याणे भी स्याणे

समृद्ध व्यक्ति या परिवार के बच्चों का भी समाज में बड़ों की ही तरह सम्मान होता हैं।

28. जी देइ जाबा बग्गड़ ... ...

ऐसा मेहमान जो आकर जाने का नाम न ले, (कहते हैं कि कोई अपने रिश्ते दारों के गया वहां से लौटने का नाम तक न लेता देखकर एक दिन उसके सम्बन्धियों ने कहा कि हम खेत में काम करने के लिए जा रहे हैं, हम देर से लौटेंगे अतः आप हमारी प्रतीक्षा किए विना ही चले जाना। तब उसने इस प्रकार उत्तर दिया :- जीं देई जावा बग्गड़, अऊं भी या परौहणा धग्गड़, (ढीठ) बट्टगा बाण तुसां आयां ते हुणा मेरा जाण।

29. जे सेरां रे सेर (शेर) नीं होवे तां डब्ब-क-डब्बे तां हुन्दे ही ए

आनुवंशिकी का कुछ न कुछ तो प्रभाव अवश्य होता है।

30. टिड्ड फुटे पर बण्डा नी छुट्टे

अधिक लालची होना या स्वाधिकार को न छोड़ना।

31 डण्डा पीर मस्टण्डयां रा सल़ंगा पीर कण्डयां रा

दुराचारी असामाजिक तत्त्व सख्ती से ही निपटे जाते हैं।

32. तितनियां जे खार्खां तितनियां भाखां [1]

अलग-२ आदमी की अलग-२ बात।

33, तिन्हा जे घरा रे चलण चलाणे तिण्हा खोल परान्दे बन्हण पाणे

जिस किसी उपाय से अपने काम को सुव्यवस्थित रखना।

34. तऊंआं तक जे हण्डुए भत्त तऊंआं तक नी गत्त

खाने के मामले में असन्तोष की भावना या सम्पत्ति को देखकर अनावश्यक खर्च

35. तिस्सा पतल़ी जे खाणा तिसा ही छिण्डा पाणा

कृतघ्नता करना, आश्रयदाता से ही द्रोह करना।

36 दोता रा भुल्लुरा जे संजा जो घरे आई जावे तां भुल्लुरा नी जाणना

गलती को सुधार लेना तथा इस प्रकार सुधरे हुए व्यक्ति को दोषी नहीं मानना

37. धी धमाका बहुए कन्न कर

वक्रोक्ति, व्याजोक्ति व्यंग्य या अन्य किसी को कोई बात समझाना। (इस) लोकोक्ति की पृष्टभूमि में उल्लेखनीय है कि बहुधा बहू के दोषों को देखकर उन्हें अपनी लड़की पर आरोपित करके डांट डपट की जाती है जिसका कि प्रमुख उद्देश्य बहू को ही सतर्क करना होता हैं।

38. चौल़ तल़ाणा

वृद्धावस्था में अपने ही किसी दुष्कर्म से अपमानित हो जाना।

39. न चौल़ न कणियां

परिश्रम करके कुछ भी हाथ न लगना।

---

1 'भाखां' शब्द संस्कृत के 'भाषा शब्द का विकृ रूप है, पहाड़ी में 'ष' को ख बोला जाता हैं जैसे मेष -मेख, वृष-बृख आदि इसी प्रकार भाषा से भाखा तथा भाखा का बहुवचन 'भ:खां'।

40. नंगा क्या नहावे क्या नचोड़े

निर्धन व्यक्ति कुछ भी न करने की स्थिति में होता हैं।

41. ना माहिए रिया मंग्गिया ना मैंहसी रेयां थणे

किसी वस्तु का स्वामी के पास से भी चले जाना तथा चाहने वाले को भी न मिलना।

42 नांव बड़े गांव उज्जड़

महज बाहरी दिखावा।

43. नौणी लाणा

खुशामद करना।

44. पैहर-सबेला रे मरूरे जो कितना क रोणा

जो बात शुरू से ही बिगड़ जाए उस पर कितना पश्चाताप किया जा सकता है

45. पौणा देखी ने पुणाई लाणा

वातावरण, बहुमत व जमाने की हवा के अनुसार कार्य करना।

46. बकरिये जालदी कि जग्यालदी

यह मुहावरा व्यंग्य कसने वाले व्यक्ति के लिए प्रयक्त किया जाता है।

47. बगानियां छाई पर मूच्छां

दूसरे के बलबूते पर नाचना।

48. बहुए घर बार तां तेरा ही आ, पर छिक्के ने हत्थ देख्यां लांदी

नाम मात्र का अधिकार।

49. बालूए जो क्या रोन्दी थी नक्का ते भी गई

अधिक अधिकार प्राप्त करने के चक्कर में मौलिक अधिकार से भी वंचित होना

50 विज्ज ही रुऊरी पौणे

चरम सीमा को लांघ जाना। कहा जाता है कि किसी व्यक्ति ने अपने ससुराल में हल जोता हुआ था, धूप बहुत तेज पड़ने पर भी वह बिना कहे बैलों को

छोड़ने में लज्जा सी अनुभव कर रहा था, उसकी सास ने कहा कि यदि धूप पड़ जाएगी तो बैलों को छोड़ देना तब उसने कहा कि अब तो बिजली ही गिरने को शेष है।

51. बिल्ला चिये नी जावे मिकुए चियें भावें सारा ही चली जावे
किसी वस्तु को उचित रीति से देने के लिए न मानना भले ही अनुचित ढंक से समूल नष्ट हो जाए।

52. बुड्ढा पया बानिया लक्का पया लकब्ब,
बौटियां नी बोलदियां सौरा पुत्त नी बोलदे बब्ब
सभी मतलब के साथी हैं।

53. बेहली जट्टी ऊन बेले
व्यर्थ के काम करना जैसे कोई ऊन ही बेलता रहे।

54. भत्ता ते पिच्छ होई जाणा
रोग आदि का असाध्य हो जाना।

55. भूक्खा बाघ मींडकां खावे
मजबूरी में अपने स्तर से गिर कर कार्य करना।

56. भेडा पर ऊन कोई नी छडदा
कमजोर व्यक्तियों का सभी शोषण करते हैं।

57. मड़ा मरे न मंजा छड्डे
लम्बी बीमारी, कार्य विशेष में अकुशलता होने पर उससे चिपके रहना।

58. मत्थे रे आऊन्दे क्याड़िया तां बाट नी सुझदी ध्याड़िया
भाग्य विपरीत होने पर बुद्धि उल्टे ही काम करने लग जाती है।

59. मामे रे कन्नें वालियां भाणजा फिरे ड़ेड़ें
दूसरों की उपलब्धियों पर घमण्ड करना।

60. मुण्डू रोन्दे छाही जो बुढिया री छक पनीरा जो
यह लोकोक्ति द्वयर्थक है :- 1. साधनों की कमी होने से इच्छाओं की पूर्ति न हो पाना। 2. संग्रहात्मिका प्रवृत्ति को प्रमुख रखना भले ही परिवार तंग रहे।

61. मुंह गाईं रे मार शेरां री
कपटपूर्ण आचरण करना ।

62 मूर्खा जो ज्ञान नी कनें मोल[1] जो म्यान नी
बेवकूफ विवेकहीन होता है ।

63. मैंहस नी चलदी सोठुए सिद्ध नी मन्नदा रोटुए
बड़ी चिज बड़े ही प्रयत्न से काबू में आती है जैसे भैंस छोटे मोटे डण्डे से नहीं चलती है ।

64 रस्ते जान्दिए बलाई तू म्हारे घरें आईजा
अपने पांव पर कुल्हाड़ी मारना ।

65. रोई ने भी गवाया सौहरे भी नी पूजी
कष्ट उठाकर भी लक्ष्य प्राप्ति न होना ।

66. लाड़ा पालकिया कने जनेती गाहणे
अनावश्यक उतावलापन ।

67. लाड़े री भुआ गलोली
किसी जगह अनावश्यक हस्ताक्षेप ।

68. ल्यांजा री माव् भिक्ख मंगदी
लोक व्यवहार में निष्पक्ष रहना ही श्रेयस्कर होता हैं ।

69. सच गलाणा तां रोटिया ते जाणा
सत्यवादी को प्रायः कठिनाईयों का सामना करना पड़ता हैं ।

70. सिरा ते गंजा नांव झांबड़िया, अक्खीं ते अन्ना नांब नैणसुख
ख्याति के अनुसार आचरण न होना जैसे झांबड़िया (केशों वाला नामक व्यक्ति सिर से गंजा हो) तथा नैणसुख (नयनसुख) नाम वाला अन्धा ।

---

1 धानों की कुटाई के लिए लकड़ी का बना हुआ लगभग ५ फुट लम्बा मूसल ।

71. सुणनी जनां री करनी मना री

सबकी बात धैर्यपूर्वक सुन लेनी चाहिए किन्तु करना वही चाहिए जिसे अपना दिल मान जाए ।

72. सेर सम्भल़ इक्क कमल़

यात्रार्थ आपेक्षित कम से कम सामग्री एक सेर आनाज तथा एक कम्बल होता हैं ।

73. स्नेहें बणज पर हत्थें खेती, कदी नी हुन्दे बत्तियां ते तेती

अपने पराये की भावना से अभिभूत होकर किए गये व्यपार में कभी बढ़ौतरी नहीं होती है अर्थात व्यापार में सबसे 'ग्राहक' की ही भावना रखनी चाहिए। इसी प्रकार दूसरे से करवाई गई खेती में भी पूरी सफलता नहीं मिलती है ।

74. होते री भैंण हीते रा भैया, कण्ठा री विद्या गट्ठी रा रुपया

भाई-बहिन सब समृद्धि के ही होते हैं तथा विद्या कण्ठ की औंर रुपये वही होते हैं जो गांठ में हों ।

75. होरनी जो होर बूड़िया जो नक्का री

अपने अधिकार के प्रति जागरूक रहना ('बूढ़ी को एक काम नहीं होता है, जब भी परिवार में कर्णाभूषणों के बनवाने की बात चलती हैं तो वह एकदम नाक के गहने का प्रस्ताव रख देती है ।)

ग्रा० कोलका, डाक० गण्ढीर
वाया बरठीं जिला बिलासपुर-174029 हि० प्र०

भारतीय दर्शन में मोक्ष की परिकल्पना

डॉ० वासु देव प्रशान्त

प्राचीन भारत में विविध विद्याओं और ज्ञान-विज्ञान का सम्यक् विकास हुआ। इन से मानव जीवन को सभी आवश्यक सामग्रियां तो उपलब्ध होती ही रही है पर साथ-२ इस देश के अधिवासियों को सांसारिक चिन्ताओं से मुक्त करके पारलौकिक चिन्तन की ओर अग्रसर रहने के लिए भी ये विद्यायें सदैव प्रेरित करती रही हैं। यह देश सभ्यता के आरंभ से लेकर हमेशा विचार प्रधान रहा हैं। विश्व के अन्य देशों में जीवन-संग्राम भौतिक पदार्थों की उपलब्धियों तक ही प्रायः सीमित रहा है। दिन प्रतिदिन के व्यावहारिक जीवन की समस्याओं को सुलझाने में ही वहां के निवासियों का समय व्यतीत होता रहा है। सृष्टि के आध्यात्मिक तत्त्वों की छानबीन करना, यथार्थ चिन्तन करना तो उनके जीवन की आकस्मिक घटनाएं हैं परन्तु भारत में स्थिति नितान्त भिन्न रही है। सांसारिक उपलब्धियों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिए जाने पर भी जहां अध्यात्म विद्या को ही सर्वोपरि स्थान मिला है। 'मुण्डकोपनिषद्' में ब्रह्मविद्या को सर्वविद्या प्रतिष्ठा कहा गया है :-

स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठ पुत्राय प्राह (१/१)।

भगवान कृष्ण ने सभी विद्याओं में अध्यातमविद्या को अपना ही स्वरूप बतलाकर उस के महत्त्व को पर्याप्ति रूपेण प्रतिपादित किया है --

अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् (गीता १०/३२)।

इसी प्रकार कौटिल्य ने भी 'अर्थशास्त्र में आन्वीक्षिकी विद्या को सब विद्याओं के लिए दीपक, सब कर्मों के अनुष्ठान का साधन-मार्ग और सब धर्मों का आश्रम माना है :-

प्रदीपः सर्व विद्यानामुपायः सर्व कर्मणाम्।
आश्रयः सर्वधर्माणां शाश्वदान्वीक्षिकी मता ॥ (१/२)

प्राचिन भारत में दर्शनशास्त्र का आविर्भाव जागतिक क्लेशों से निवृत्ति के हेतु उपायों को ढूंडने के लिए हुआ। विविध ताप से संतप्त जनमानस को शान्ति प्रदान करने के लिए अध्यात्म विद्यां प्रधान संबल रही हैं। विचारशास्त्र प्राचीन मनीषियों की कल्पना का लोक नहीं बल्कि

उस का क्षेत्र तो इसी धरा पर है। इस की उत्पत्ति दुःख की व्यावहारिक सत्ता की व्याख्या तथा उस के निराकरण करने के लिए साधन मार्ग की विवेचना से होती है। दर्शन की दर्शनता हीं इस लोक और परलोक के तत्त्वों के विश्लेषण में तर्कबुद्धि का समुचित उपयोग करने में है।

अध्यात्म विद्या का लक्ष्य-मोक्ष :- यह केवल एक भ्रान्ति है कि अध्यात्म विद्या का लक्ष्य मानसिक कौतुहल की निवृत्ति ही है बल्कि उसका उपयोग तो व्यावहारिक जगत के तापत्रय आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक संतापों से सम्पूर्ण प्राणीमात्र को छुटकारा दिलाने में है। मुक्ति मार्ग का उपदेश देने वाले आचार्य लोग आधियों और व्याधियों से भरे हुए भवसागर से पार जाने के लिए तत्त्व ज्ञान की साधना पर बल देते हैं। मनुष्य मात्र के जीवन के आगे जो ध्येय रखे गये हैं उन्हें पुरुषार्थ की संज्ञा दी गई है, ये पुरुषार्थ चार प्रकार के हैं :- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इन में मोक्ष को श्रेष्ठ माना जाता है अन्य तीन पुरुषार्थों पर भी यदि सम्यक् रूप से आचरण किया जाए तो वे मोक्ष की प्राप्ति में ही सहायक होते हैं। मोक्ष की उपलब्धि इसी जीवन में सम्भव है। अनेक भारतीय दर्शनों में इस बात पर समुचित बल दिया गया है कि इस जन्म में ही ताप-संताप से सम्पूर्ण मुक्ति प्राप्त कर मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है। मानव-जीवन का लक्ष्य काल्पनिक परलोक में दुःखों से निवृत्ति न हो कर इसी जीवन में उस आदर्श की उपलब्धि हैं। जैन, बौद्ध तथा वेदान्त आदि षड्दर्शनों में जीवन्मुक्ति को ही जीवन का लक्ष्य बतलाया गया है। विशिष्टाद्वैत आदि दर्शनों में यद्यपि जीवन्मुक्ति का सिद्धान्त मान्य नहीं है तो भी उन के अनुसार तत्त्व ज्ञान की समुचित साधना से आत्मा ऐसी उन्नत अवस्था में पंहुच जाती है कि जीवन का उद्देश्य एक साधारण कोटि से बदल कर विशिष्टता को प्राप्त कर लेता हैं। उपनिषदों की महत्त्वपूर्ण देन जीवन्मुक्ति का आदर्श ही है। कठोपनिषद् में इस बात को स्पष्ट किया गया है कि जब हृदय में व्याप्त समस्त कामनायें नष्ट हो जाती हैं तब मनुष्य को अमरात्व की प्राप्ति हो जाती है। यही ब्रह्म की उपलब्धि हैं :-

यदा सर्वे विमुच्यन्ते कांमा. ह्यस्य हृदि स्थिताः।
तदा मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥ (२.३.१४)

कुछ दर्शन, जैसे न्याय तथा वैशेषिक, मोक्ष की उन्नतावस्था में दुःख की केवल निवृत्ति मात्र मांनते हैं परन्तु अन्य दर्शनों - जैन, महांयांन बौद्ध, मीमांसां, वेदांत - के मत में उस समय आंनन्द की उपलब्धि निश्चित रूप से होती हैं।

आत्मा और ब्रह्म का ऐक्य :-आत्मा का ब्रह्म के साथ ऐक्य ही मोक्ष की उपलब्धि हैं। इस परिवर्तनशील ब्रह्माण्ड के भीतर एक अपरिवर्तनशील तत्त्व विद्यमान,है । उसी प्रकार इस पिण्ड के भीतर भी एक अपरिवर्तनशील तत्त्व की सत्ता रहती है। इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की नियामक सत्ता ब्रह्म कहलाती है और पिण्डाण्ड की नियामक सत्ता को आत्मा की संज्ञा दी गइ है। प्राचीन ऋषियों ने ब्रह्माण्ड और पिण्डाण्ड का ऐक्य सर्वतोभावेन स्वीकार किया हैं ओर ब्रह्म और आत्मा की एकता प्रतिपादित की है। ब्रह्म के बारे में भी दार्शनिकों का यह मत है कि यह कोई अलभ्य और अलौकिक पदार्थ नहीं; प्रत्युत् प्रत्येक प्राणी अपने भीतर नियामक आत्मा के रूप में उसी ब्रह्म की सत्ता का अनुभव करता है। इसलिए मुमुक्षु को आत्मा और ब्रह्म का साक्षात्कार करना पड़ता है और तत्पश्चात् दोनों में ऐक्य स्थापित हो जाता है।

निस्सन्देह जगत् के समग्र पदार्थों में आत्मा ही श्रेष्ठ है। मानव जीवन के समस्त कार्य-कलापों के बीच आत्मा की शक्ति कार्यरत प्रतीत होती है। सभी मानव कृत्यों का अन्तिम लाभ आत्मसुख ही है। मुक्ति की कल्पना में यद्यपि बहुत से दार्शनिकों के मतभेद हैं, किन्तु आत्मा के विषय में वे एकमत हैं। आत्मा का ज्ञान कराना चाहे वह ब्रह्म से भिन्न हो या अभिन्न, प्रत्येक दर्शन का लक्ष्य है।

बृहदारण्यक उपनिषद् (२/४) की यह कथा अत्यन्त प्रसिद्ध है कि महर्षि याज्ञवल्क्य ने वृद्धावस्था आने पर अपनी सम्पत्ति को अपनी दोनों पत्नियों - कात्यायनी और मैत्रेयी - के बीच बांट दिया। तब विदुषी मैत्रैयी ने इस लौकिक सम्पत्ति के प्रति अनिच्छा दिखाई क्योंकि इस से अमरत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती। तब महर्षि ने उसे आत्म तत्त्व के बारे में उपदेश दिया जो भारतीय धर्म तथा दर्शन के इतिहास में सदैव अमर रहेगा। उन्होंने कहा - पति के लिए पति प्यारा नहीं, बल्कि आत्मा के लिए। पत्नि के लिए पत्नि प्यारी नहीं, बल्कि आत्मा के लिए। पुत्र के लिए पुत्र प्यारा नहीं, बल्कि आत्मा के लिए। संसार की सभी वस्तुऐं अपने लिए प्यारी नहीं, बल्कि आत्मा के लिए, अतः सब से प्रिय वस्तु आत्मा ही है। इसलिए इस आत्मा का प्रत्यक्ष करना चाहिए, श्रवण करना चाहिए, मनन करना चाहिए तथा निदिध्यासन (सतत ध्यान) करना चाहिए। क्योंकि आत्मा के नर्शन, श्रवण,मनन तथा विज्ञान से सब कुछ जाना जा सकता है। 'महर्षि याज्ञवल्क्य का यह उपदेश भारतीय दर्शन तथा धर्म की मूल भित्ति है। मानव जीवन का चरम लक्ष्य आत्मा का साक्षात्कार - आत्मा का साक्षात अनुभव है।

विभिन्न दर्शनों में मोक्ष का स्वरूप :- भारतीय दर्शनों - चार्वक, जैन, बौद्ध, षड्दर्शनों आदि में मोक्ष की कल्पना अलग-२ रूप में मिलती है।

चार्वाक दर्शन में मोक्ष की कल्पना विलक्षण है । चार्वाक लोग वस्तुत: चार पुरुषार्थों - धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष में आदिय और अन्तिम पुरुषार्थों के अस्तित्व को नहीं स्वीकारते । उन के अनुसार प्रत्येक क्लेश का निकेतन यही भोगायतन शरीर है । जब तक शरीर की सत्ता है तब तक जीव विविध संकटों को भोगता हुआ जीवन-यापन में लगा रहता है । ज्योंहि इस देह का पतन होता है त्योंहि समग्र दुःखों की निवृति हो जाती है इस लिए चार्वाक मरणमेवापवर्ग - अर्थात मरण को ही अपवर्ग मानते हैं ।

अन्य दर्शनों के अनुसार जहां मोक्षावस्था में आत्मा अपने स्वरूप में विद्यमान रहती है, वहां चार्वाक मत में इस की उपपत्ति नहीं होती । वे तो देह को ही आत्मा मानते हैं जो मृत्यु के साथ ही अविद्यमान हो जाता है । अतः शरीरान्त के बाद किसी स्थाई नित्य पदार्थों के अस्वीकार करने के कारण चार्वाकों की मुक्ति नितान्त असत्य हैं ।

अब प्रश्न पैदा होता है कि चार्वाकों के लिए जीवन के लक्ष्य क्या हैं ? उतर होगा अर्थ और काम । काम उनके लिए प्रधान पुरुषार्थ है और उसका सहायक होने से अर्थ भी समानरूप से महत्त्वपूर्ण है । अतः प्राणी मात्र के लिए जीवन का एकमात्र उद्देश्य है ऐहिक सुख की उपलब्धि । लौकिक सुख ही जीवन का लक्ष्य होने के कारण अर्थार्जन परमावश्यक हो जाता है । अत एव चार्वाकों के लिए अर्थ और काम दो ही पुरुषार्थ निर्धारित हैं । उनका निम्न कथन सर्वत्र प्रसिद्ध हैं :—

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत ।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥

अर्थात् जब तक जीए, सुखपूर्वक जीए अपने पास द्रव्य न होने पर भी ऋण लेकर घी पीये । ऋण के लौटाने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता क्योकि शरीर के भस्म हो जाने पर भला कहीं पुनरागमन होता है ।

अतः खाओ पियो मौज उड़ाओ - यही चार्वाक जीवन का एकमात्र लक्ष्य है । सांसारिक सुखवाद ही चार्वाकों के अनुसार प्राणीमात्र का प्रधान लक्ष्य होना चाहिए ।

चार्वाक-दर्शन के उपर्युक्त मत की निन्दा सभी दार्शनिकों ने जी खोलकर की है । जिस दर्शन में धर्म के लिए स्थान नहीं पाप-पुण्य का अस्तित्व नहीं । स्थूल भौतिक सुखवाद ही

जीवन का परम पुरुषार्थ है, वह जीवन की गुत्थियों को सुलझाकर उस के लिए आदर्श और बाञ्छित मार्ग की क्या सृष्टि करेगा।

जैन मत का उद्‌गम मूल रूप में धर्म के रूप में हुआ था। किन्तु कालान्तर में उसे दर्शन का रूप प्राप्त हो गया। जैन दर्शन में मोक्ष की उपलब्धि के तीन साधन बतलाये गये हैं :- सम्यक् दर्शन सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक चरित्र।

सम्यक्-दर्शन ज्ञानचरित्राणि मोक्षमार्गः। (तत्त्वार्थसूत्र १/१)

जैन दर्शन में 'दर्शन शब्द' श्रद्धा का वाचक है, अतः मोक्ष प्राप्ति के लिए साधक के पास प्रथम साधन के रूप में सम्यक् श्रद्धा होनी चाहिये। यह श्रद्धा तीर्थंकारों के द्वारा प्रतिपादित शास्त्र सिद्धान्तों में अटूट विश्वास है। सम्यक ज्ञान से अभिप्रायः है कि साधक को शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित सभी सिद्धान्तों तथा तत्त्वों का यथार्थ एवं गंभीर अनुभव प्राप्त करना चाहिये। सम्यक् दर्शन और सम्यक ज्ञान की चरितार्थता सम्यक चारित्र्य में जाकर सम्पन्न होती है। इन तीनों मोक्षोपयोगी साधनों को जैन दर्शन में रत्नत्रय की संज्ञा दी गई है।

जैन दर्शन के अनुसार जीव निसंगतिः मुक्त है पर वासना जन्म कर्म उसके शुद्ध स्वरूप को ढके रहता है जीवन के साथ कर्म का सम्बन्ध तथा विच्छेद दिखलाने के लिये जैन दर्शन में सात पदार्थों का वर्णन है जो निम्न है :-

आस्रब. बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, जीव तथा अजीव।

भोगात्मक जगत तथा भोगायतन शरीर के साथ जीव के संबंध कराने का प्रधान कारण कर्म ही है कर्म से सम्बन्ध होने से जीव बन्धनमुक्त और उस के प्रभाव से हीन होने पर वह बन्धनमुक्त कहलाता है कर्मयोग को ही आस्रव कहा गया है कर्मों के द्वारा जीवों का साक्षात व्याप्त कर लेना बन्ध कहलाता है। यदि आगे आने वाले कर्मों के मार्ग को सर्वथा बन्द कर दिया जाये तो उसे संवर कहते हैं इस के बाद अगला सोपान निर्जरा का है जब कर्मो को निर्वीर्य बना कर फलभाव के लिये उन्हें जीर्ण कर दिया जाता है। इसी से मोक्ष के सोपान की तरफ साधक अग्रसर होता है यह तभी सम्भव है जब साधक कर्म का आंत्यान्तिक क्षय कर ले इसी लिये उमास्वाति ने समस्त कर्मों के क्षय को मोक्ष नाम दियां है

बन्धहेत्वभांव निर्जरांयां कृत्स्नकर्मक्षयो मोक्षः (तत्त्वांर्थसूत्र १०.५.३)

मोक्षोपलब्धि के अनन्तर जीव एकदम अपने नैसर्गिक शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर लेता है।

मुमुक्षु सिद्धावस्था तक पहुंचने के लिए क्रमशः अनेक सोपानों में से गुजरता है जिन्हें जैन-दर्शन में 'गुणस्थान' कहा गया है। ये संख्या में १४ हैं जिनमें मिथ्यात्व से लेकर क्रमशः सिद्धि की अन्तिम श्रेणी तक पहुंचना एकमात्र लक्ष्य माता जाता है। मोक्ष प्राप्ति के लिये सम्यक् चारित्र्य अन्तिम साधन है जिस की सिद्धि के लिये इद सार्वभौम पांच महाव्रतों का पालन नितान्त आवश्यक है :-

अहिंसा, सत्य, अस्तेय. ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह।

इस प्रकार जैन धर्म में मोक्ष की परिकल्पना कर्मबन्धन से निवृत्ति पर आश्रित हैं।

बौद्ध दर्शन में मोक्ष की परिकल्पना निर्वाण के रूप में है। निर्वाण के स्वरूप के संबन्ध में हीनमान और महामान अलग-अलग धारणा में रखते हैं। हीनमानी निम्न दुःखत्रय को जागतिक पिड़ा का कारण मानते हैं (१) दुःखदुःखता अर्थात भौतिक और मानसिक कारणों से उत्पन्न होने वाला क्लेश (२) संस्कम्-दुःखता अर्थात विनाशशील जगत की वस्तुओं से उत्पन्न होने वाला क्लेश (३) विपरिणाम-दुःखता अर्थात सुख को दुःख रूप में परिणत करने के कारण उत्पन्न क्लेश। इन क्लेशों से मुक्ति इतनी सम्भव नहीं है इसका एकमात्र उपाय भगवान बुद्ध ने आर्य सत्य का अनुशीलन बतलाया है। आर्य सत्य चार प्रकार के हैं :-

दुःख अर्थात जगतीतल पर दुःखों की कठोर तथा स्थूल सत्ता,

दुखसमुदय अर्थात दुःखों का कारण। ये कारण द्वादश निदान अर्थात जरामरण, जाति, भव, उपादान, तृष्णा, वेदना, स्पर्श, षड़ायतन, नामरूप, विज्ञान, संस्कार तथा अविद्या हैं जो पूर्व के प्रति पर निर्दिष्ट कारण हैं,

तृतीय आर्य सत्व **दु,खनिरोध या निवारण** है, और चतुर्थ आर्य सत्य **दुःखनिरोध गामिनी प्रतिपत्** अर्थात निर्वाण मार्ग हैं।

बुद्ध ने घोर तपाचरण आदि के द्वारा इस काञ्चन काया को शुष्क बना देने वाले उपायों का खण्डन करके मध्यम प्रतिपदा को खोज निकाला जिसे **आर्य अष्टांगिक मार्ग** भी कहते हैं। इस के आठ अंग निम्न हैं :-

सम्यक् ज्ञान, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कमन्ति, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति एवं सम्यक् समाधि। इस अष्टांगिक मार्ग पर समुचित रूप से चलने से प्रज्ञा का उदय होता हैं और निर्वाण की सद्यः प्राप्ति हो जाती है।

हीनमान मत के अनुसार निर्वाण सत्य, नित्य, पवित्र तथा दुःखाभावरूप है, जबकि महामानी अन्तिम विशेष को नहीं मानते वे निर्वाण को दुःख का अभाव नहीं मानते। प्रत्युत् वे उसे सुखरूप मानते हैं। हीनमान में भिक्षु अर्हत् की दशा को प्राप्त कर निर्वाण पा लेता है। निर्वाण वह मानसिक दशा है जब जगत् के समग्र प्राणीमात्र से भिक्षु अपने आप को अभिन्न मानता है। उसके अपने व्यक्तित्व का लोप हो जाता है और सभी प्राणियों के साथ एकरूपता की भावना उस के हृदय में जागृत हो जाती है। महामान का आदर्श इससे अलग है वह बोधिसत्व को आदर्श मानव मानता है जो जगत् के उपकार में लगा रहता है। उस के लिए निर्वाण पूर्ण आनन्द की अवस्था हैं।

षड्दर्शनों में मोक्ष की परिकल्पना थोड़े बहुत अन्तर के बावजुद एक जैसी ही हैं। न्याय-दर्शन में जीवन का लक्ष्य यही है कि प्राणी इस दुःख बहुल संसार से सदैव के लिए मुक्ति पा ले। दुःख से अत्यन्त विमोक्ष को ही अपवर्ग कहा गया है :-

तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः। (न्यायसूत्रः १.१.२२)

यह विमोक्ष ज्ञान के द्वारा ही संभव है, परन्तु ज्ञान की सहायता के लिए मनुष्य को योग-सूत्रों में वर्णित उपायों का सहारा लेना चाहिए। मुक्तावस्था में आत्मा के नवों विशेष गुणों बुद्धि सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म अधर्म तथा संस्कार का नाश हो जाता है। मुक्त दशा में आत्मा अपने विशुद्ध स्वरूप में प्रतिष्ठित और अखिल गुणों से विरहित रहती है। मुक्त आत्मा में सुख का भी अभाव रहता है, अतः न्यायदर्शन के अनुसार मुक्तावस्था में आनन्द की प्राप्ति नहीं होती।

वैशेषिक दर्शन में मोक्ष की परिकल्पना तथा प्राप्ति का उपाय न्याय दर्शन जैसा ही हैं निष्काम कर्म के सम्पादन से सत्त्वशुद्धि होती है। सत्त्वशुद्धि का फल तत्त्वज्ञान का उदय है। वह मिथ्याज्ञान की निवृति के द्वारा मोक्ष का प्रधान कारण हैं। इस प्रकार वैशेषिकों के अनुसार मोक्ष के उदय के प्रति तत्त्वज्ञान साक्षात् कारण है। परन्तु निष्काम कर्म परम्परया कारण है। जब तक कर्म का कोई हिस्सा बाकि रहता हैं, तब तक उस के फल को भोगने के लिए जन्म धारण करना ही पड़ता है। जब संचित कर्म तथा प्रारब्ध कर्म का फल समाप्त हो जाता और नये कर्म उत्पन्न नहीं होते तब पुनर्जन्म भी समाप्त हो जाता है। आत्मा दुःखों से आत्यान्तिक निवृत्ति प्राप्त कर मुक्त हो जाता है इस मोक्ष की उपलब्धि का कारण तत्त्वज्ञान ही है। इससे मोह का नाश हो जाता है। कर्म के प्रति आसक्ति न होने पर प्रवृत्ति स्वतः बन्द हो जाती है। फलतः सब प्रकार के दुःखों के नाश हो जाने पर मुक्ति की उपलब्धि हो जाती है।

साख्यदर्शन के अनुसार क्रियाहीनता, संगहीनता तथा कर्तृत्वहीनता का अनुभव ही मुक्ति है जो मनुष्य को इसी जन्म में उपलब्ध हो सकती है। यह मुक्ति दो प्रकार की है :- जीवन्मुक्ति और देहमुक्ति। विवेकज्ञान होने पर मनुष्य इसी जन्म में जिस मुक्ति का अनुभव करता है उसे जीवन्मुक्ति कहा गया है। जीवन्मुक्त व्यक्ति कर्म व्यापार से सर्वथा मुक्त नहीं होता प्रत्युत् इसी लगन तथा निष्ठा से प्रारब्ध कर्मों के निष्पादन में जुटा रहता है। इस स्थिति में कर्म बाधा उत्पन्न नहीं करते देह मुक्ति उस समय मिलती है जब पुरुष दुःखत्रय-आधत्मिक' आधिदैविक तथा आधिभौतिक के विनाश की स्थिति में पहुंच जाता है। विज्ञान भिक्षु ने इसी को वास्तविक मुक्ति माना है।

मीमांसा-दर्शन में मोक्ष की परिभाषा इस प्रकार है :-

प्रपञ्चसम्बन्धविलयो मोक्षः।

अर्थात इस जगत् के साथ आत्मा के सम्बन्ध का नाश मोक्ष है। प्रपंच के इन तीन बन्धनों ने आत्मा को संसार चक्र में डाल रखा है। भोगायतन शरीर, भोगसाधन इन्द्रिय, भोगविषय पदार्थ, जब इन तीनों बन्धनों का पूर्णतया नाश हो जाता है, तब मोक्ष की स्थिति आ जाती है।

मोक्ष की दशा में आत्मा आनन्द के अनुभव से रहित हो जाता है। मीमांसक कहते हैं कि चैतन्य आत्मा का स्वाभाविक गुण नहीं, वरन् शरीर आदि के सम्पर्क से ही उसे सुख दुःख की अनुभूति होती है। जब आत्मा शरीर से अलग हो जाता है तो उसे सुख का अनुभव भी नहीं होता अब प्रश्न पैदा होता है कि सुख की अनुभूति से रहित दशा वांछनीय क्यों है ? उत्तर यही है कि आत्मा सुख दुःख से परे हो जाता है और अपने विशुद्ध स्वरूप में पहुंच जाता है, यही मुक्ति की वास्तविक दशा है।

वेदान्त दर्शन की मोक्ष की कल्पना अत्यन्त महनीय है। इसमें आत्मा और ब्रह्म की एकता ही मुक्ति की स्थिति है छान्दोग्य उपनिषद का महावाक्य तत्त्वमसि इसी एकत्व को प्रतिपादित करती है। इसका अभिप्राय है कि त्वम् (जीव) तत् (ब्रह्म) ही अर्थात ब्रह्म और जीव की एकता है। अहं ब्रह्मास्मि वाक्य भी इसी का द्योतक है। इस साधन के बल पर जीव और ब्रह्म का भेद मिट जाता है। साधक को एकत्व का ज्ञान हो जाता है भ्रम दूर होने पर उसे मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है साख्यिकों के समान वेदान्ती भी जीवन्मुक्ति और देहमुक्ति नामक दो प्रकार की मुक्ति मानते हैं।

मोक्षोपलब्धि के साधन :–मोक्ष प्राप्ति के उपायों में सभी दर्शनों में एक रूपता दिखाई देती है। दर्शनशास्त्र तो केवल सिद्धि के मार्ग तक पहुंचाता है। उस द्वार के अन्दर जाने के लिए साधना की नितान्त आवश्यकता है, अतः काल्पनिक तत्त्वज्ञान को व्यवहारिक रूप में बदलना पड़ेगा। इस का वर्णन योगसूत्रों में किया गया है। योगदर्शन में वर्णित प्रक्रिया में भारत के प्रत्येक दर्शन को मान्य हैं।

बौद्ध-दर्शन में मोक्ष प्राप्ति के विविध साधनों में समाधि को विशिष्ट साधन के रूप में स्वीकृत किया गया है। जैन दर्शन में सम्यक् चारित्र्य के लिए यम, नियम आदि तथा ध्यान को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। न्याय दर्शन में भी यौगिक प्रक्रिया में आत्मसाक्षातकार के लिए अत्यावश्यक बतलाई गई हैं। सांख्य-वेदान्त आदि में भी इन्हीं साधनों पर बल दिया गया है इन दर्शनों के अनुयायियों का यह दृढ़ विश्वाश है कि तर्क के द्वारा सिद्ध किया गया दार्शनिक सिद्धान्त तब तक हमारे अज्ञान को दूर करने में असमर्थ होता है, जब तक उसे हम आत्मसात न कर लें। इसलिए भारतीय दर्शन में तर्क सिद्ध तत्त्वों पर निरन्तर मनन एवं चिन्तन की आवश्यकता है।

मानव जीवन का चरम लक्ष्य है आत्मा का साक्षातकार, इसके लिए उपनिषदों में इन तीन साधनों का उपदेश दिया गया है :- श्रवण, मनन, तथा निदिध्यासन। आत्म-तत्त्व विचार के लिए ऋषियों की स्वानुभूति को प्रदर्शित करने वाली श्रुति सब से बड़ी प्रमाण मानी जाती है।

धर्म जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः (मनुस्मृति २.१३)

इसलिए श्रुति वाक्यों से आत्म-तत्त्व का श्रवण करना चाहिए। यद्यपि वेद में प्रतिपादित सिद्धान्त निःसदिग्ध है तथापि मनन भी अत्यन्तावश्यक है, अतः आत्म तत्त्व का तार्किक यक्तियों से मनन करना चहिए। आत्मसाधना का तृतीय साधन है - निदिध्यासना अंष्टांगयोग इसी का उपाय है, श्रवण तथा मनन के बाद ध्यान से ही आत्मा का स्वानुभव होता है, इस आत्म-तत्त्व के दर्शन के बाद मुमुक्षू ब्रह्म से एकत्व प्राप्त कर लेता है ओर मोक्ष की दशा में पहुंच जाता है।

राजकीय स्नात ेत्तर महाविद्यालय,

धर्मशाला।

संस्कृत तथा भाषा विज्ञान

डॉ मन्त्रिणी प्रसाद

भाषा के तत्त्व का चिन्तन 'भाषा दर्शन' कहलाता है। उस दर्शन को इन्द्रियग्राह्य कराने का अर्थ है उसे 'विज्ञान' की कोटि में ले आना। उस विज्ञान को जीवन में प्रयुक्त करने का अभिप्राय है उसे 'शास्त्र' में बदल देना। शास्त्र मर्यादाएँ बांधता है। नियम तथा निषेध का विधान करता है।

भाषा के सम्बन्ध में इन तीनो उपाधियों का प्रयोग किया जा सकता है। यथा भाष-दर्शन, भाषा विज्ञान और भाषाशास्त्र। उपाधि (Conditioning) से रहित एक अन्य शब्द जो इस सन्दर्भ में प्रचलित हुआ है वह है 'भाषिकी'। अंग्रेजी में व्यवहृत होने वाले दो शब्द फिलौलोजी (Philology) तथा लिंगुइस्टिक्स (Linguistics) 'भाषा दर्शन' और 'भाषा-विज्ञान' के परिचायक है।

भाषा विज्ञान के भिन्न भिन्न आयाम हैं। भाषा का इतिहास ढूंढना, उसके पुराने रूप की खोज करना तथा वर्तमान रूप से सम्बन्ध जोड़ने की प्रक्रिया उसका एतिहासिक आयाम है। एक परिवार की भाषाओं का तुलना परक अध्ययन तथा उस (अध्ययन) के आधार पर सिद्धान्तों का प्रतिपादन 'तुलनात्मक आयाम' है। उन भाषाओं की समान शब्दावलि के माध्यम से लोगों की संस्कृति तथा सभ्यता पर प्रकाश डालना 'सामाजिक आयाम' है। भाषा के शब्द, उनके अर्थ उन शब्दों से निर्मित वाक्य मन में किस प्रक्रिया से पैदा होते हैं, यह खोज 'मनोवैज्ञानिक आयाम' के अन्तर्गत आंती है।

भाषा के विवेचन की पद्धतियों को लेकर इसी तरह के कई अन्य 'आयाम' निकल आते हैं इस शताब्दि के आरम्भ से मध्य तक जिस विवेचन पद्धति का बोलबाला रहा उसक नाम था 'स्ट्रक्चरल लिंगुइस्टिक्स' (Structural Lirguistics) अर्थात भाषा के शरीर पर शल्यक्रिया द्वारा उसके अवयवों की रचना अध्ययन। इसमें प्राणवायु के रूप में संचरणशील तत्त्व 'शब्दार्थ' की जानबूझ कर अवहेलना की गई। इस पद्धति के अग्रणी विद्वान् ब्लूमफील्ड का कहना था कि 'अर्थ' तो दर्शन की कोटि में पड़ा पड़ा एक रहस्य ही बना रहेगा, उसे विज्ञान की सीमा में खींच लाना एक दुष्कर कार्य है।

उन्नीस सौ आठ के दशक में यह धारणा बदल गई। अर्थतत्त्व को उसका वास्तविक मिलना चाहिए तथा भाषा विज्ञान को भाषा के 'शरीर और आत्मा' दोनों के विवेचन का बीड़ा उठाना चाहिए, तभी उसकी सार्थकता है। उन्नीस सौ पैंसठ में चौम्स्की (Chomsky) ने टी. जी. ग्रामर [T. G. Gr.][1] नाम वाली एक विवेचन पद्धति की रूपरेखा प्रस्तुत की जिसने थोड़ी देर के लिए भाषा विज्ञान के क्षेत्र में एक तहलका सा मचा दिया। कालान्तर में चौम्स्की द्वारा प्रतिपादित धारणाओं के 'मनोविज्ञान' के आधार पर परीक्षण किये गए। कई धारणाएँ कसौटी पर ठीक उतरीं कई अन्य उतनी खरी नहीं उतर पाईं। ब्लूमफील्ड के पक्षधरों के चिन्तन ने भाषा विज्ञान के अनुसन्धान में अतीत से जो सम्बन्ध विच्छेद कर डाला था वह चौम्स्की के कारण फिर जुड़ गया तथा चौम्स्की Structural Linguistics के विकास में उपस्थित अवरोध को हटाने वाले मसीहा प्रमाणित हुए।

चौम्स्की के अनुसार वाक्य के अन्तः और बाह्य दो रूप हैं। अन्तः रूप उसका अर्थ है और बाह्य उसका ध्वनि, मन में मूलतः एक विचार उत्पन्न होता है। विचार की स्थिति में वाक्य का रूप अन्तस्तल[2] में रहता है, अभिव्यक्ति के रूप से वह उपरितल[3] पर आ जाता है। उपरितल पर आए अनेक वाक्य यदि वे समानार्थक हैं तो अन्तस्तल में उनकी एकरूपता स्थापित की जा सकती है एकरूपता को स्थापित करने का कार्य 'व्याकरण' करता है और व्याकरण से तात्पर्य है 'उन परिमित नियमों का पता करना जिनके माध्यम से भाषा के अपरिमित वाक्यों की रचना की जा सकती है।'

हर एक भाषा का, चाहे उसकी लिपि हो या वह बिना लिपि के हो, अपना एक व्याकरण होतां है जिसे उस भांषां के परिवेश में रहतां हुआं एक अबोध शिशु भी सहजमांव से आंतमसांत् कर लेतां है। भांषांशांस्त्री कां कार्य है उस व्यांकरण कां पतां करतां।

इस तरह के व्याकरण भविष्य में ढूंढे (=लिखे) जाएँ या न, परन्तु अतीत में एक प्रयत्न अवश्य हुआ। हमारा संकेत पाणिनि के अष्टाध्यायि की ओर है। अष्टाध्यायी एक ओर तो (Structural Linguistics) का बेजोड़ नमूना है दूसरी ओर टी. जी. ग्रामर की अपेक्षाओं

---

1. T. (transformational) G. (generative) Gr. (Grammar)
2. अन्तस्तल deep structure
3. उपरितल surface structure

को काफी मात्रा में पूरी करता है। कारक प्रकरण में पाणिनि कई बार वाक्य की रूपान्तरित (transformed) अवस्था को छोड़कर उसके पूर्वरूप (kernal sen ence) की जाँच पड़ताल कर नियम की व्यवस्था करते हैं।

उदाहरण के लिए 'अपांस्रष्टा' इस वाक्यांश में अपांषष्ठी का रूप है और स्रष्टा प्रथमा का। कारक के रूप में 'अपां' कर्म माना गया परन्तु कर्म कारक की विभक्ति द्वितीय इसमें परिलक्षित नहीं होती। अपांस्रष्टा के मूल में अपः सृजति वाक्य मिलता है जहाँ अपः द्वितीय विभक्ति में है। 'अपःसृजति' वाक्क की transformation (रूपान्तरण) करने पर 'अपांस्रष्टा' यह वाक्यांश generate (उद्भूत) हुआ। 1

भाषा विज्ञान के छह अंग :हैं-

ध्वनि, पद, वाक्य, शब्दव्युत्पत्ति, कोष तथा अर्थ विज्ञान

भारत में ध्वनि शास्त्र का विकास एक विशेष उद्देश्य को लेकर हुआ। वह था वेदों को उस रूप में अक्षुण्ण रखने का विचार जिस रूप में वेद मन्त्रों का आविर्भाव हुआ था। ध्वनि के सम्बन्ध में जितना मौलिक चिन्तन भारतीय मनीषियों ने किया उतना अन्यत्र दुर्लभ है। आधुनिक भाषाविज्ञान उनके चिन्तन का आज भी ऋणी है।

कोष की प्रारम्भिक रूपरेखा 'निघण्टु' में मिलती है, जिसमें वैदिक संहिताओं से संगृहीत शब्दों को तीन भागों में प्रस्तुत किया गया है।

ऐसे शब्दों की सूचियां जो समानार्थक हैं।
ऐसे शब्द जो अनेकार्थ हैं, तथा ऐसे शब्द जिनकी संरचना तथा अर्थ दुरूह हो गए हैं।

निरुक्त के पहले दो अध्यायों में महर्षि यास्क ध्वनि सम्बन्धी परिवर्तनों का संकेत करते व्युत्पत्ति शास्त्र की भूमिका बांधते हैं तथा अर्थविज्ञान की रूपरेखा संवारते हैं। इसके उपरान्त वे वेदों के भाष्यकार के रूप में उतरते हैं। शब्दों की व्युत्पत्ति पुरःसर व्याख्या उनका प्रिय कार्य है।

---

1 कर्तृकर्मणोः कृति २, ३, ५। कृत्प्रयोगे कर्तरिकर्मणि च षष्ठी विभक्तिर्भवति। कर्मणि अपांस्रष्टा। (काशिका)

शब्दों के विश्लेषण तथा अर्थ बोध की प्रक्रिया में न्याय (दर्शन) और मीमांसा (दर्शन) का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इन दर्शनों में 'पद और वाक्य' का विवेचन जिस बारीकी से किया गया है वह देखते ही बनता है।

भाषाविज्ञान के क्षेत्र में यूनानी दार्शनिक भारतीय मनीषियों के प्रतिद्वन्दी रहे हैं। उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तौ की पश्चिम के विद्वानों में आज भी बड़ी मान्यता है। प्लैटो तथा अरिस्टोटल ने 'वाक्य तथा उसके अवयवों' (अर्थात पदों) पर तार्किक दृष्टि से गहरा अनुशीलन किया है।

प्लैटो वाक्य को सबजैक्ट (subject) तथा प्रैडीकेट (predicate) में विभाजित करते हैं। इस पद्धति का अनुसरण योरूप की आधुनिक भाषाओं में आ भी किया जाता है। सबजैक्ट का अर्थ है 'कर्त्ता- तथा प्रैडीकेट का अर्थ है 'क्रिया'। कर्त्ता से अभिप्राय है एक संज्ञा शब्द का जो क्रिया द्वारा संकेतित कार्य पूरा करे।

अरिस्टोटल इस पहलू को यों उजागर करते हैं :-

'जो कार्य पूरा करे' वह संज्ञा जो न करे वह 'असंज्ञा'। अर्थात् कर्त्ता के अतिरिक्त, 'कर्म संप्रदान, अधिकरण आदि' कारक विभक्तियों में पाए जाने वाली संज्ञा नब्दों की सता उन्हें स्वीकार नहीं। ऐसी संज्ञाएँ उनके लिए मात्र कारक हैं।

इसी तरह क्रिया से वे अर्थ लेते हैं वर्तमानकालिब क्रिया। वाक्य 'भूत तथा भविष्य' काल में हुआ नहीं कि क्रिया का तत्त्व समाप्त। तत्त्व फिर 'काल' (tense) ही रह गया। अरिस्टोटल असली और नकली क्रिया [1] का भेद मानते हैं तथा क्रिया के विना भी उन्हें वाक्य की सत्ता स्वीकार है।

संज्ञा और क्रिया के अतिरिक्त प्लैटो विशेषण को भी मानते हैं परन्तु उसे वे क्रिया के खाते में रखते हैं। इसी तरह (transformational generative grammar) के सिद्धान्तवादी चौम्स्की विशेषणों को verbal मान कर चलते हैं अर्थात् वाक्य का विश्लेषण करते समय चौम्स्की क्रिया और विशेषण का विवेचन एक ही धरातल पर करने के पक्ष में हैं।

---

1 नक़ली क्रिया का उदाहरण He, is, Just

जो न संज्ञा है न क्रिया और न विशेषण है उन्हें अरिस्टोटल 'संयोजक' नाम देते हैं। इस तरह वाक्य में चार प्रकार के पदों की भूमिका बन जाती है [1]।

निरुक्त के रचयिता यास्क भी चार प्रकार के पद मानते हैं यथा 'नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात'। नाम से उनका अभिप्राय 'सर्वनाम, विशेषण तथा संज्ञा' से है। आख्यात का तात्पर्य क्रिया से है। उपसर्ग 'नाम तथा आख्यात' के आगे जुड़ने वाले पद हैं तथा 'निपात इन तीनों से भिन्न है।

यास्क की दृष्टि में संज्ञाऐं वे हैं जिनका स्वरूप ठोस हैं तथा क्रियाऐं वे हैं जिनसे द्रवण-शीलता घनीभूत होकर समाप्त हो जाए तो वह संज्ञा में रूपान्तरित हो जाएगी। यास्क तथा निरुत्क संप्रदाय का यह सर्वोपरि सिद्धान्त है कि सभी संज्ञाऐं क्रियाओं से निष्पन्न होती हैं।

शब्दों की व्युत्पति करना निरुक्त शास्त्र का उद्घोषित कर्तव्य है और हर संज्ञा पद के मूल में क्रिया ढूंडना एक जिम्मेवारी। निरुक्त का यह सिद्धान्त कुछ एक वैयाकरणों ने भी अपः नाया। वैयाकरणों के गले जो बात नहीं उतर सकी वह थी यास्क की उपसर्गों के सम्बन्ध में यह उक्ति कि 'उपसर्ग नाम ओर आख्यात दोनों में उत्पन्न नये अर्थों का संकेत करने वाले पद हैं।' स्वयं निरुक्त के व्याख्याकार 'दुर्ग' यह कहते हुए उछल पड़ते हैं कि संज्ञाओं से उपसर्गों के सम्बन्ध का जोड़ा जाना हमें स्वीकार नहीं क्योंकि पाणिनि के अनुसार 'उपसर्गाः क्रियायोगे' - क्रिया के सम्बन्ध से ही उपसर्गों को उपसर्ग माना जा सकता है [2]।

---

1 बाद के दार्शनिकों ने जिनसे Stoics उल्लेखनीय हैं पदों की संख्या आठ तक पहुंचा दी।

2 पाणिनि, यास्क के चार पदों को घटा कर दो कर देते हैं। सुप् तिङ् अन्तं पदम् अर्थात एक संज्ञा दूसरी क्रिया उपसर्गों और निपातों को वे अलग-अलग खाते में डाल देते हैं। एक खाते का नाम रखते हैं 'प्रादि' [जिसमें 'प्र' से शुरू होने वाले ध्वनिसमूह पड़े हों] तथा दूसरे का 'चादि' ['च' से शुरू होने वाले ध्वनि समूह]।

आवश्यकता के अनुसार पहले खाते से कुछ एक को बाहर निकालते हैं, उनका अलग नामकरण करते हैं, तथा नए परिवेश में नई व्याख्या करते जाते हैं। यास्कके बीस उपसर्गो में से ग्यारह का नाम कर्मप्रवचनीय पड़ता है तथा उनका सीधा सम्बन्ध संज्ञापदों से कर दिया जाता है। क्रिया पदों से उनका वास्ता पड़ ही जाए तो उपसर्गों की तुलना में उनकी स्वतन्त्र

संस्कृत भाषा की यह विशेषता है कि वह बड़ी 'पारदर्शना' (transparent) रही है। उसके संज्ञा पदों का प्रकृति और प्रत्यय के रूप में विश्लेषण बड़ा सहज रहा है। कठिनाई तब पैदा हुई अब अन्य भाषा के शब्दों का इसमें समावेश हो रहा तथा उनकी व्युत्पत्ति संस्कृत के क्रियापदों से सम्भव नहीं हो पाई। कालान्तर में संस्कृत के अपने पद भी ध्वनि सम्बन्धी परिवर्तनों के कारण क्लिष्ट हो गए। इधर ऐसा कोई सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं हुआ जो क्रियापदों से सभी संज्ञापदों की निष्पति के सिद्धान्त का विरोध करता। पूर्वाचार्यों के (व्याकरण पक्ष के) किसी ऐसे ग्रन्थ का पता नहीं जिसमें निरुक्त के मत का युक्तियुक्त विरोध किया गया हो। उत्तरकालीन वैयाकरणों ने निरुक्त संप्रदाय का पक्ष लेते हुए 'क्रिया' को अभिमान देना जारी रखा और यहाँ तक कह डाला कि :- एकतिङ् वाक्यम् - अकेले क्रियापद से भी वाक्य बन सकता है। अर्थ की प्रतीति (=शब्दबोध) के पक्ष को लेकर एकमात्र प्रतिरोध यदि कहीं से हुआ तो वह नैयायिकों की ओर से हुआ। परन्तु इधर वैयाकरण, मीमांसकों से मिल गए।

उदाहरण के लिए वाक्य हैं हरिं भजति चैत्रः। नैयायिक कहेंगे इस वाक्य में प्रथमान्तार्थमुख्यविशेष्यकशाब्दबोधः। अरिस्टोटल जैसा तर्क है - प्रथमा विभक्ति में विद्यमान कर्त्ता चैत्र यहां मुख्य है। बाकी सब कुछ गौण है।

वैयाकरण कहेंगे - भावार्थमुख्यविशेष्यकशाब्दबोधः। नहीं, नहीं, यहां तो केवल क्रिया 'भजति' यही मुख्य है। और मीमांसक कहेंगे : हां, हां, क्रिया 'भजति' मुख्य है और विशेषकर इसमें लगा प्रत्यय 'ति'।

नैयायिक एक प्रश्न उपस्थित करते हैं बिलकुल अरिस्टोटल जैसा। 'अयं घटः' इस वाक्य में तो आप प्रथमा विभक्ति में विद्यमान कर्ता 'घट' को मुख्य मानेंगे ही ? वैयाकरण कहते हैं हम यहां क्रिया जोड़ेंगे। नैयायिक फिर कहते हैं कैसे जोड़ेंगे ? यहां तो काल (tense) की

पद के रूप में सत्ता दृष्टिगोचर होती है। इसी तरह बहुतों को (अर्थात बीस उपसर्ग+अन्य प्रादि) एक बड़े परिवार का अंग बनाकर एक नया नाम 'गति' दिया जाता है और उस स्थिति में उनका कार्य है क्रिया तथा कृदन्त रूपों में प्रकट होने वाले उदातादि स्वरों को नियमित करना। अलग से बीसों के बीस जब क्रिया के साथ जुड़ पाते हैं तभी उनकी उपसर्ग संज्ञा हो पाती है अन्यथा (बिना क्रिया के संयोग के) वे मात्र 'प्रादि' वाले खाते में पड़े हुए ध्वनि समूह हैं।

कल्पना अस्पष्ट है तथा 'त्रयः कालाः' काल - भूत, भविष्यत और वर्तमान तीन हैं।

आरिस्टोटल होते तो वे यों तर्क करते - यदि वैयाकरण लोग यहां [अयं घटः] अस्ति जोड़ते हैं तो हम उसे नकली क्रिया करार देंगे। 'अभूत' या भविष्यति जोड़ते हैं तो हमारे सिद्धान्त में वह क्रिया मानी ही नहीं जाएगी। अभूत भूतकाल तथा भविष्यति भविष्यत् काल के वाचक होंगे (क्रिया के नहीं)।

नैयायिकों और मीमांसकों में एक बात पर समझौता होता है और वह है वाक्य में अलग अलग पदों की सत्ता की सिद्धान्त। दोनों बड़े आत्मविश्वाश से घोषणा करते हैं 'शक्तं पदम्'। पदों का प्रयोजन एक हो तो वे अर्थ का संकेत करने में समर्थ हैं। वैयाकरण पूछते हैं क्या यज्ञः, यजमानः, दधि इन तीनों का प्रयोजन एक होने से यहां वाक्य बन जाता है ?

मीमांसक उत्तर देते हैं नहीं, सारे पद प्रधान बने रहेंगे उनमें तालमेल नहीं बैठेगा। उनमें समन्वय की आवश्यकता है। कौन प्रधान होगा कौन गौण यह तय होना जरूरी है। नैया-यिक प्रधान और गौण के झमेले में न पड़ते हुए अपने ढंग से पदों के आपसी सम्बन्ध की व्याख्या करते हैं। अर्थैकत्वाद् एकं वाक्यं साकांक्षं चेद् विभागे स्यात् पदों के समन्वय में आकांक्षा[1] का तत्त्व विद्यमान रहा तो अर्थ एक होगा और वाक्य बनेगा। नैयायिक आकांक्षा के साथ वाक्य की रचना के सम्बन्ध में दो और शर्तें लगाते हैं वे हैं - योग्यता और आसति। उन्हीं पदों का वाक्य बन सकता है जो इस योग्य हैं। अर्थात अर्थ की दृष्टि से उनमें पारस्परिक विरोध नहीं होना चाहिए। 'अग्निना सिंचति' इस वाक्य में तर्क की दृष्टि से 'आग और सींचना' ये दोनों पद साथ साथ नहीं चल सकते।

आसति' का तात्पर्य है पदों के उचारण में बिलम्ब नहां होना चाहिए अन्यथा 'आकांक्षा' अधर में ही लटकती रह जाएगी।

वास्तव में देखा जाए तो निरर्थक अथवा परस्पर विरोधी शब्दों के समन्वय में व्याकरण-शास्त्र को आपत्ति नहीं होनी चाहिए (यदि पदों से वाक्य बनते हों) तर्क शास्त्र को भले ही हो।

---

1 नैयायिक आकांक्षा की परिभाषा करते हैं - प्रत्ययेप्रकृत्युत्त रत्वमेवाकांक्षा। पद, प्रकृति और प्रत्यय से बनता हैं जैसे हरिम् ; इसमें हरि प्रकृति है और 'म्' प्रत्यय। प्रत्यय के श्रवण मात्र से दूसरे पद को ग्रहण करने की इच्छा आकांक्षा है - हरिम् भजति चैत्रः।

चूंकि वाक्य विन्यास में व्याकरण के नियमों का पालन हो चुका होता हैं। Chomsky का एक प्रसिद्ध वाक्य है green ideas are sleeping furiously in the meadow। ऐसे वाक्य को बनने से रोकने के लिए आप क्या कर सकते हैं ?

मीमांसकों का कहना है हम पदों का समन्वय नहीं उनके अर्थों का समन्वय करते हैं। उससे अर्थवान् वाक्य बनता है जो वक्ता के तात्पर्य को अभिव्यक्त करता है। प्रक्रिया कुछ जची नहीं। होना तो यह चाहिए कि आप अर्थवान् वाक्य बना लें फिर उस अर्थ को अलग अलग पदों में बांट लें। बालक पहले वाक्यों को सुनता है फिर वाक्य में आए पदों के अर्थ को वाक्यार्थ के सहारे पहिचानता जाता है।

परन्तु ऐसा भी हो सकता है कि वाक्य का अर्थ कुछ ऐसा निकले जिसे पदों में बांटा ही न जा सके। 1

फिर तो वाक्य को पदों में विभक्त करने अथवा पदों को जोड़कर वाक्य बनाने का सिलसिला ही बिगड़ गया। भर्तृहरि ठीक ही कहते हैं :-

पदे वर्णा न भिद्यन्ते, वर्णेष्ववयवा इव।
वाक्यात्पदानामत्यन्तं प्रविवेको न कश्चन॥

वाक्य का पदों में विभाजन पदों का वर्णों में विभाजन करके विश्लेषण करना सिद्धान्ततः गलत है। वाक्यस्य वाक्यार्थे शक्तिः वाक्य एक स्वतन्त्र इकाई है अपने अर्थ को अभिव्यक्त करने में स्वयं समर्थ है।

मंत्रिणी प्रसाद
27, Y.M.C.A.
SHIMLA-171001

---

1 'मेरा सिर चक्कर खा रहा है,' तर्क करना चाहे तो प्रश्न उठता हैं कि क्या 'सिर' खाने की क्रिया समपन्न कर सकता है ? 'चक्कर' क्या कोई खाने की चीज है ? क्या इस वाक्य का ध्वनित अर्थ इसके पदों में बांटा जा सकता है ?

काँगड़ा में प्रचलित 'श्रीकृष्ण' का झेड़ा

योगेन्द्र सिंह 'तूर'

'मेरी दादी अम्मा ... ... अंतिम दृष्य ... ... आह ! लगता है सब उसके साथ ही समाप्त हो गया। वह जंग अम्मां हिमाचल संस्कृति की जीती जागती उदाहरण ... ... आह ... ... मुझे कितने वर्षो बाद ख्याल आया था कि मैं दादी अम्मां से कुछ अपने सांस्कृतिक पहलुओं को लेखनीबद्ध करूं। काश यह होश मुझे बहुत पहले आया होता तो मैं दादी अम्मां को अपने सामने बैठाकर हिमाचल संस्कृति तथा सभ्यता पर एक नहीं अनेक पुस्तकें लिख सकता था। किन्तु मेरी अपनी संस्कृति के प्रति उदासीनता शायद मुझे तत्पर नहीं होने देती थी। मैं महानगरीय बोध में पोषित कैसे इतने बड़े झूठ को निगल सकता था। किन्तु समय के अन्तराल में मुझ में परिवर्तन हुआ और मैंने अपनी दादी अम्मां से कुछ झेड़े, छमाड़े, बारहमासे झझोरियां तथा लोक गीत ही लिपिबद्ध कर पाया था कि वह सदा के लिये बिछुड़ गई। इसने गूगा लोक काव्य को एक बार सुनाया था। बड़ी तमन्ना हुई थी कि लिपिबद्ध करूं ... ... किन्तु अन्यमनस्क ही रहा। जाने इन्हें इतने कई लोक काव्य याद थे किन्तु वह सब आग के झोंके के साथ स्वाहा हो गया। जिस झेड़े का मैं उल्लेख करने जा रहा हूं वह अपनी दादी अम्मां के द्वारा ही गाया गया है जिसे मैं यहां व्याख्यामित करने जा रहा हूं।

जब मैंने हिमाचल भाषा, संस्कृति तथा कला की ओर से संगृहीत झेड़ों का संग्रह देखा तो मेरे मन में 'श्रीकृष्ण का झेड़ा' का अभाव खटका। भर्तृहरि बिलासपुरे दा राजा, चम्बे दा राजा आदि पर झेड़े हिमाचल में काफी मशहूर हैं। किन्तु श्रीकृष्ण का झेड़ा इन झेड़ों से बिलकुल हटकर है। इस 'झेड़ा' को किसी के घर लड़का पैदा होने पर गाया जाता है। आजकल तो फिल्मी संगीत का रिवाज बढ़ोतरी पर है किन्तु अब भी काँगड़ा के कई परिवारों में श्रीकृष्ण के झेड़े को बड़े प्रेम से गाया जाता है।

यहां श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व की सरसरी तौर पर चर्चा हो जाए। यह बात मान्य है कि हमारी हिन्दु संस्कृति की रग रग में श्रीकृष्ण का वैविध्यपूर्ण व्यक्तित्व जितना समाया हुआ है उतना राम का नहीं। इसीलिए हम देखते हैं कि दुनियां में श्रीकृष्ण जैसा महान व्यक्तित्व सामने

नहीं हैं और न कभी आएगा। श्री कृष्ण के व्यक्तित्व को हमारी हिन्दु संस्कृति ने इन्हें समग्र तथा वैविध्यपूर्ण ढंग से अपनाया है, चाहे वह संस्कृति हिमाचली, हरियाणवी या उतरप्रदेशिय आदि प्रांतीय ईकाइयों में विभक्त क्यों न हो। श्रीकृष्ण पूर्ण मानव हैं इसलिए हम देखते हैं कि हमारे देश का चाहे कोई भी भूभाग क्यों न हो श्रीकृष्ण को लेकर गीत गनगुनाए जाते हैं तथा उनके प्रति श्रद्धाभाव प्रकट किया जाता है। यहां कांगड़ी बोली में श्रीकृष्ण को लेकर प्रचलित झेड़े की चर्चा की जा रही है। कांगड़ी बोली में प्रचलित इस झेड़े में संगीत तत्त्व ही नहीं है वरन् इसमें साहित्यिकता का स्वरूप भी विद्यमान है। इस झेड़े को कांगड़ा के माहौल ने जो तराश दी है उससे लगता है कि श्रीकृष्ण का जीवन बाल रूप से लेकर विराट रूप तक सजीव हो उठा है। झेड़े का आरम्भिक अंश इस प्रकार है :-

उआरे ते पैणे देवकी उतरी,
पारे ते जशोदा माई ... हरे राम ... हरे राम......
कट्ठियां होइयां मिलण लगियां
देवकी छम - छम रोए।
कैं रोंदी पैणे देवकिए
क्या तिज्जो दुःखड़ा लग्या।

यहां प्रथम दो पंक्तियों में 'उआर' और 'पार' शब्द संक्षमित हैं। मायने ये हैं कि देवकी एक तरफ के पहाड़ से उतर कर आती है और यशोदा दूसरी तरफ के पहाड़ से। यानी दोनों का संयोग बीच कहीं खड्ड या नाले इत्यादि में संभावित है। हिमाचल का भोगोलिक स्थिति भी ठीक ऐसे ही है। दोनों तरफ पहाड़ होंगे बीच में घाटी या खड्ड। जब देवकी और यशोदा मिलती हैं तो देवकी अपने भारी मन से अबाधित रूप में रोने लगती है। माता यशोदा देवकी से इसका कारण जानना चाहती है।

चार जमैं राजे कंसे न मारे
पंजुएं बारी पैणे होग ... हरे राम ... हरे राम ... ...
मत रोंए पैणे देवकिए नी
दुःखै तां लैंगी बंडाई नी।

क्योंकि 'महाभारत' में यह प्रसंग है कि राजा कंस को भविष्यवाणी हुई थी कि उसकी अमर मौत होगी तो सिर्फ उसके भानजे के हाथ ही अन्यथा नहीं। इसलिए कंस ने अपनीं बहन देवकी और बहनोई वासुदेव को बंदीगृह में कड़ी निगरानी में जेल की सींखचों के भीतर ठोंस

दिया था। इस प्रकार देवकी की चार संतानों की जब कंस हत्या कर देता है तो उसका मातृ-हृदय चीख उठता है। और जब कोख में पांचवीं संतान उग आती है तो इसके बचाव के लिए वह प्राण पन से कोशिश में जुट जाती है। इस झेड़े में देवकी का स्वयं यशोदा के पास जाना महाभारत के अनुसार नहीं है किंतु इसे कांगड़ा के 'श्रीकृष्ण के झेड़े' की अपनी विशिष्टता ही कहा जाएगा।

तेरे जरमणा कृस्न मुरारी
मेरे तां जरमणी कन्या कुमारी
दुःखँ लैंगी बंडाई जो ... हरे राम ... हरे राम ...

यशोदा पूरे आत्मविश्वास से देवकी का हौंसला बुलन्द करती है। देवकी की कोख से बालक और यशोदा की कोख से कन्या पैदा होंगी - इस के आदान प्रदाद के लिए वे सहमत हो जाती है।

घर गइय देवकिया दरदां लगियां
जरमया कृस्न मुरारी जी
लै वसुदेवा, जशोदा तें चलिया।
इक पासे सींह गरियांदे
दूएं पासे जमना सूके
चरण तले जमना छपन होई।
सींह दरसण पाइया
जगदे पैरू सेइ यो गे
खुल गे धरमी दुआरे जी।

इस प्रकार यशोदा और देवकी के बीच बातचीत होती है और फिर दोनों अपने अपने घर वापिस लौट जाती है। घर पहुचने पर देवकी को प्रसव पीड़ा शुरू हो जाती है जिसके परिणाम स्वरूप बालक रूप में कृष्ण पैदा हो जाते हैं। बासुदेव श्रीकृष्ण को यशोदा के पास ले जाते हैं। इस बीच जब श्रीकृष्ण अवतरित हुए तो जेलघर के पहरेदार निद्रा देवी की गोद में पहुच जाते हैं। तथा धर्मद्वार खुल जाते हैं। मार्ग में यमुना नदी में बाढ़ जोरों पर थी तथा दूसरी ओर शेर हिंस्र हो रहे थे। किंतु श्रीकृष्ण को अवतरित जानकर यमुना स्वयं मार्ग दे देती है तथा जंगली शेर भगवान के दर्शनों के लिए लालयित हो उठते हैं।

लै वसुदेवा जसोदा ते गइया
कृस्न छड्डिया कनिया लेइया
सुतड़े पैरू सह जागी खड़ोते
बन्द होई गए घरमी द्वार ... हरे राम .. हरे राम

वायदे के अनुसार वासुदेव श्रीकृष्ण को यशोदा की गोद में छोड़कर उसकी कन्या को ले आते हैं। जब वे जेलखाने के भीतर जा पहुंचते हैं तो पहरेदार जाग पड़ते हैं तथा जेलखाने के दरवाजे आदि बन्द हो जाते हैं।

कृस्न ने जरम जे लेया
पली रहें गोकुल जाइ जी
कनिया दी बिजली लसके
जग विच्च उजाला होइया जी ... हरे राम ... हरे राम

धीरे धीरे श्रीकृष्ण बड़े होते हैं। इनका पालन पोषण यशोदा और नन्द के संरक्षण में होता है। तथा जिस कन्या को वासुदेव ले आते हैं वह कंस की क्रूरता का शिकार हो जाती है कही कन्या बिजली बनकर आकाश में चली जाती है जो अपने बलिदान के लिए दुनियां में मशहूर हो जाती है।

छोडी दैणी कंस मामा
देई देणी मथुरा ओ' मारी
मथुरा तां, तां ओ' दिग्गा
चानों चमारे मारी कन्नै ओंगा।

श्रीकृष्ण जब बड़े हो जाते हैं तो वे अपने क्रूर मामा कंस से प्रतिशोध लेना नहीं भूलते हैं वे मथुरा राज्य का अपना हक मांगते हैं किंतु कंस खूब चालबाज होता है। इसलिए वह श्रीकृष्ण को ऐसे मुश्किल काम करने का आदेश देता है जो दुरूहतर होने के साथ प्राणों के लाले पड़ने का होता है

लूणा चमारडिए, चानो दिया मौती तूं दसियां
मौती तां ओ' दस्सा
जे तूं लेई चलां अपण सौगी
समाणे चोटी चोई, पियाले भरी बाहें उतारीं
समाणे जो कुकड कल्ले, पिआल पुरी सींक उतारी।

श्रीकृष्ण ने चानो के विषय में लूणा चमारी से जानकारी हासिल की। चानो देवता का स्वरूप भी विराट था। शिखा आकाश में, बाहें पाताल को स्पर्श करती थीं किंतु कृष्ण ने आकाश में मुर्गी तथा पाताल में सींक उतारी। परिणायतः श्रीकृष्ण कंस की शर्त पूरी करते हैं।

छोडी देणी कंस मामा
देई देणी मथुरा ओं मारी
मथुरा मैं तां बो दिगा
पिआला भरी जाइ तूं ओंगा।

श्रीकृष्ण फिर मथुरा के राजपाट का हक मांगते है किंतु धूर्त कंस दूसरी शर्त लगाते हैं कि अगर नागराज को मारकर आएगा तो वह मथुरा को त्याग देगा।

हत्थे डंडोरू मूंडै चोला
पिआल पुरी अलख जगाया
उठ वो बलिवंस जोढ़े
बार कोई दरसणे अइया।
हत्थां जो कंगण कन्नां जो कुडलू
होर तां दम्म दिया बौरियां
इतना धन तूं तौ ओं बेटा
दिन्नी ओं नागां ते चोरिया ... ...

श्रीकृष्ण भगवान के साक्षात स्वरूप थे। इसलिए उनकी सामर्थ्य से परे सृष्टि का एक तिनका भी बाहर नहीं जा सकता था। वे पाताल जाना स्वीकार कर नागराज की हत्या करने की शर्त भी मान लेते हैं। नागराज सोये हैं। कृष्ण उनके दर्शन की लालसा प्रकट कर नागराज की पत्नी से पता पूछते हैं। नागिनी नागराज को सोया जान जगाना अपने धर्म के प्रतिकूल मानती है। इसलिए वह कई तरह के लालच देती है। किंतु कृष्ण इसका जवाब देते हैं :-

क्या करां हत्थां दे कंकणु कन्ना दे कुंडलु
क्या करां दम्मा दियां बोरियां
इत्थू बसदे बलिवंस जोढ़ा
इन्नां दयां दरसणां जो अइया।

इस बात से नागिनी क्रोधित होती है और नागराज को जगा देती हैं :-

उठीयें नागणी चपणी आई
सुतड़ा नाग जगाया
उठ वे बलिवंस जोद्धा
बार बैरी कोई आए ओ'

नागराज सुप्तावस्था से जागृतावस्था में आ जाते हैं। श्रीकृष्ण इससे स्पष्ट अपना अभिरिसत कह डालते हैं तथा नागराज को मौत के घाट उतार देते हैं :-

क्या करां तेरियां अरजां मिन्नतां
मेरे बस कोई नई है
माई जसोदा देइयें बछोले
छाई छोले नेती मंगे काले नाग दी
क्या करां तेरियं अरजां मिन्नता
मेरे बस कोई नई है
पैली चत्पट मुकटे कित्ती
हरिजू रूपै उतारिया
दूजी चप्पट छातिया कित्ती
सर्प वीना लमकइया

श्रीकृष्ण इस प्रकार कंस की दूसरी शर्त को भी पूरा करते हैं। किंतु तब भी वह मथुरा को छोड़ने के लिए उद्यत नहीं होता है। वह और शर्त लगाता है :-

छोड देनी कंस मामा
देई देणी मथुरा ओ' मारी
मथुरा मैं तां ओ दिग्गा
छिजा कुला करी औए।

कृष्ण कुश्ती के लिए भी तैयार हो जाते हैं :-

पैली चोट टमकें पेई
गंभणी ते गभ हराए

इत छिजा नी ओ' जाणा
इत तेरे दुसमण बैरी
दुसमण तेरे माए मेरे लगदे मामें
लइयां माए पिट्ठी हथ्थ
छिजा कुली कर ओइए
दिख माए मुखड़ू - ए
चौंइ कुटां दा नजारा - ए।

माता यशोदा वत्सलवश कृष्ण को मल्लयुद्ध के लिए भेजना नहीं चाहती हैं। किंतु कृष्ण अपने मुख को खोल कर संपूर्ण ब्रह्माण्ड को दिखा देते हैं तथा यह प्रमाणित कर देते हैं कि वे तो भगवान की साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं।

छोडी देणी कंस मामा
देई देणी मथुरा ओं' मारी
मथुरा मैं तां वो दिग्गा
चौंसर धोवे तूं मारें
छोडी देणी कंस मामा ... ...
देई देणी मथुरा ओं' मारी
धौवा मारी सट्टया, यह नदिया रूडइया।

इस प्रकार भगवान् कृष्ण क्रूर तथा धूर्त कंस की समस्त चालबाजों को नाकामयाब करते हुए अपनी शक्ति को प्रदर्शित करते हैं। प्रस्तुत झेड़ा वींर रस से ओत प्रोत है इसलिए वीर रस का झेड़ा कहा जा सकता है। 'गीता' में श्रीकृष्ण ने जो यह उद्घाटन किया है कि जब जब धरती पर अत्यचार तथा पापों में प्रसार होगा तो वे अवतरित होगें तथा अत्यचारियों का संहार करके लोगों को भयमुक्त करेंगे - यह बात प्रच्छन्न रूप से इस झेड़े में विद्यमान है। श्रीकृष्ण कंस का एकदम संहार न करके उसे खेल खेल कर मारते हैं। श्रीकृष्ण ने ये शौर्य सम्पन्न कार्य अपने लड़कपन में हीं कर डाले थे। आवश्यकता इस बात की है कि ऐसे महान् व्यक्तित्व से प्रेरणा लेकर आज हम सब को नये स्वच्छ समाज के निर्माण का संकल्प लेना चाहिए तभी हमारी प्राचीन लोक संस्कृति तथा सभ्यता जीवित रह सकेगी।

ठाकुर केशोदास कॉलेज
थुरल-१७६१०७ काँगड़ा (हि. प्र.)।

परिचय :- डॉ० शम्मी शर्मा

संस्कृत एवं हिन्दी साहित्य के परम विद्वान् ज्योतिषाचार्य अवस्थी बदरी दत्त जी के पुत्र। सोलह जून सन् उन्नीस सौ छब्बीस (16-6-1926) को धौलीधार पर्वत माला की अधित्यका में प्रकृति-सौन्दर्य से परिपूर्ण सेराथाना ग्राम(कांगड़ा) में उत्पन्न हुए। शिक्षा सेराथाना नगरोटा बगवां, कांगड़ा, धर्मशाला, अमृतसर में हुई।

अनुसंधान कार्य :- १९५५ से १९५८ तक महापंडित राहुल सांकृत्यायन के सम्पर्क में रह कर कांगड़ी जन भाषा पर कार्य किया। १९५६ से १९५९ तक पश्चिमी-पर्वतीय लोक साहित्य पर शोध कार्य किया जिस में कुल्लू से लेकर चम्बा तक के लोक साहित्य का अध्ययन एवं अनुसंधान किया। इस ही काल में उक्त क्षेत्र की विविध लोक भाषाओं और लोक साहित्य पर गवेषणात्मक निबन्ध भाषा विभाग पटियाला, साधु आश्रम होशियारपुर की पत्रिकाओं, धर्मयुग, सरस्वती आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। १९७४ से भक्तिकाल के महाकवियों 'सूर और तुलसी की जीवन दृष्टि का तुलनात्मक अध्ययन पर शोध प्रबन्ध सम्प्रति पंजाब विश्वविद्यालय से स्वीकृत हो कर पी. एच. डी. की उपाधि प्राप्त हुई।

रचनाएें :- शोधात्मक, गवेषणात्मक एवं वर्णात्मक २५० विविध रचनाऐं विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई।

पुस्तकें :- १. पंजाब के पर्वतीय प्रदेश (वर्णात्मक बाल साहित्य)
२. कांगड़ा का इतिहास (लघु संस्करण)
३. पर्वती - लोक साहित्य पर निबन्ध
४. बिखरे कण - गद्य गीत
५. हिमजा - लोक संस्कृति पर निबन्ध
६. कुन्तली - हिन्दी काव्य संग्रह

हिमाचल प्रदेश शिक्षा विभाग में प्राध्यापक सम्प्रति प्राचार्य सेवाकाल १९५६ से आज तक

साहित्यिक आयु :- सन् १९५४ से लेकर लिखते आ रहे हैं।

पंजाब विश्वविद्यालय की पी. एच. डी. के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध का संक्षेप प्रसार

शीर्षक : सूर और तुलसी की जीवन दृष्टि का तुलनात्मक अध्ययन

शोधकर्त्ता : डाँ० शमी शर्मा

शोध प्रबन्ध का संक्षिप्त विवरण और उपलब्धियां - **निर्देशक : डाँ० गणपति चन्द्र गुप्त**

सूर और तुलसी ने इष्टदेव को रिझाने, उस की अर्चना, पूजा करने तथा भक्ति की तन्मयता में की गई अनुभूति को प्रकट करने के लिए सुन्दर सुन्दर पदों का गायन किया। दास्य, सख्य, रति, प्रभृति मनोंभूमिकाओं में गाये गये गय काव्य अपने दिव्य साहित्यिक गुणों के कारण 'महाकाव्य' संज्ञा से विभूषित हुए। आज शताब्दियां बीत चुकी तथा आगे भी अनेक बीत जावेंगी परन्तु मानव के निराश और उतपिड़न के क्षणों में राम और कृष्ण भक्त कवियों के प्रभावोत्पादक वर्ण संयोजन वाली पद-योजनाओं की मधुर स्मृति और दैन्य तथा आत्म निवेदन के भाव, संतोष का पाथेय प्रदान करते रहेंगे। मनोंदशाओं के भाव, संतोष का पाथेय प्रदान करते रहेंगे। मनोदशाओं के कुशल पारखी एवं लोक कल्याण की चिर मंगलमयी कामना संजोए हुए सूर और तुलसी दोनों महाकवियों ने अखिल विश्व के प्रति सौहाई, प्रेम, करूणा, दया आदि अपनत्व के भावों से तिरंगित करके 'सर्वं खल्विडं ब्रह्म' का आलोक प्रदान किया है। हिन्दी साहित्य के गगन के इन उज्जवल ददीप्यमान नक्षत्रों ने केवल भरत भू को ही नहीं, अपितुः विश्व साहित्य को निष्कम्प प्रकाश प्रदान किया है अपने अपने क्षेत्र के ये दोनों सूर्य हैं। महात्मा सूरदास में ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा अधिक थी तो दूसरी ओर तुलसी दास ने 'नाना पुराण निगमागम' से विचार संग्रहीत कर लोक कल्याणमयी सुधा-सिक्तरसना से पीयूष उंडेल दिया है। युग सापेक्ष भारतीय संस्कृति और धर्म की परम्पराएं इन युग-द्रश दोनों कवियों के काव्य में समुपेत हैं।

दोनों ही कवियों पर पृथक रूप से अनेक शोध तथा रचनाऐं प्रकाशित हो चुके हैं। हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य विद्वानों ने अथिक आजीवन परिश्रम से भक्तिकाल के इन दोनों महाकवियों के काव्य के विभिन्न पक्षों पर युगपत् चिन्तन धाराएं प्रवाहित की हैं। सूर और तुलसी

के इन व्याख्याताओं ने उन के जीवन और कृतियों के विशद विश्लेषण तो प्रस्तुत किए हैं पर युग सापेक्ष उन के जीवन दृष्टिकोण और व्यक्तित्व की मूल प्रवृतियां विद्वानों की विचार धारा और पकड़ से छूट गई हैं। मूर्धन्य विद्वानों अध्येताओं एवं आचार्यों ने इन सरस्वति के वरद पुत्रों दोनों युग पुरुषों पर अनेक शोध, अनुसंधान की रचनाऐं की हैं। किंतु फिर भी सूर और तुलसी के अध्येताओं के लिए शोध का अनन्त क्षेत्र बना हुआ है। प्रभु तक पहुंचे हुए इन भक्त कवियों की ईश्वरीय प्रतिभा एवं ज्ञान का अक्षय भंडार बार बार आलोड़न करने पर पुनः नये रूप में ही सामने आता है।

सूर और तुलसी पद आलोचना का क्रम हिन्दी में द्विवेदी युग से चलता आ रहा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल मिश्रबन्धुओं ने जहां तुलसी को श्रेष्ट बताने का प्रयास किया वहां सूर भक्त कवियों ने सूर का गुणगान किया। हमारा उद्देश्य तुलना द्वारा किसी महाकवि को बड़ा या छोटा बनाना नहीं है। ये दोनों महाकवि अपने अपने क्षेत्र के अद्वितीय प्रतिभावान हैं। उन के जीवन के मूल में निहित ज्ञान, भावधारा और काव्य तत्त्व को समान दृष्टि से समझने का प्रयास मात्र है वेदान्त ज्ञान के मर्मज्ञों वैष्णव सिद्धान्त-प्रतिपादकों, आचार्यों, भागवत धर्मी मुमुक्षुओं एवं काव्य शास्त्र के तत्त्व वेताओं पर मुझ जैसे आकिंचन का कुछ लिखना पहाड़ को अंगुली से उठाना होगा। यह सब मेरी सामर्थ्य से बाहिर है। जो कुछ प्रयास किया है वह गुरू आज्ञा का पालन मात्र है क्योंकि 'आज्ञा गुरूणो ह्यविचारणियः'।

प्रस्तुत प्रवर्तन के मूल में भक्ति काल के इन दोनों महाकवियों को समान दृष्टि से देखा गया है। व्यक्तित्व और काव्य शास्त्र के अनुरूप उनके एक उद्देश्य प्रभुभक्ति' के विभिन्न परिणाम हैं। सूर स्वरूप देखकर विभोर हुए हैं तो तुलसी दास ने संस्कृति निष्ट व्यवहार में भगवान को पहिचाना है। सूर भाव लोक के स्वामी है तो तुलसी दास समन्यवादी लोक मर्यादा की चिन्तनधारा के प्रवर्तक हैं। दोनों ही महाकवियों पर पृथक रूप से अनेक शोध एवं विवेचनाऐं विद्वानों तथा साहित्यिक पंडितों आचार्यों की उपलब्ध हैं। किंतु मुझे ऐंसा कोई भी ग्रन्थ हिन्दी साहित्य में दिखाई नहीं दिया जहाँ साहित्य मानम के इन हंसों को काव्य सुधा में एक साथ डुबकियां लगाते देख सकूं। इस अभाव की पूर्ति के लिए ही प्रस्तुत विषय का प्रतिपादन किया गया है

प्रस्तुत प्रबन्ध को आठ अध्यायों से विभक्त किया है। प्रथम अध्याय में जीवन दृष्टि की व्याख्या की गई है। जीवन दृष्टि तथा जीवन दर्शन में क्या साम्य तथा अन्तर है यह एक तर्क पूर्ण चिन्तन है जिसे समझने का प्रयास यहां हुआ है। साहित्य और जीवन का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है। संक्षेप में ये अन्त्रोन्याश्रित हैं। यह प्रवेश अध्याय समस्या का मूलाधार है जिस

पर दोनो महाकवियों की जीवन पद्धति अभिप्रेत है। दोनों ही महाकवियों की समयावधि भक्ति काल है। समकालिन होने से मूलत: समाजिक प्रवृतियां और धार्मिक स्थितियां समान्यत: एक जैसी हैं। इस का विवेचन हमने दूसरे अध्याय में किया है। इस को पांच खण्डों में विभक्त कर हिन्दी साहित्य के इतिहास के विद्वानों के काल सीमा पर विभिन्न मतों एवं निर्णयों का अवलोकन है। युगीन परिस्थियों और भक्ति काल के मुख्य कारणों का वर्गीकरण करके एक नया रूप दिया है। इन कारणों की स्पष्टत: से दोनों महाकवियों के आविर्भाव और जीवनोद्देश्य का स्वरूप स्वाभाविक रूप से प्रकट हुआ है। इस के स्पष्टिकरण के पश्चात राम भक्त काव्य और कृष्ण भक्ति काव्य का सामान्य परिचय रखा गया है। भक्ति काव्य की सगुण धारा की परिचयात्मक पृष्टभूमि के पश्चात् उन का परस्पर सम्बन्ध हो सकता है।

भक्ति काल के सामान्य अध्ययन में विशेष उपलब्धि युगीन परिस्थितियों, मानव प्रवृतियों के कारणों पर विशेष गम्भीरता से विचार कर चौदह विभिन्न कारणों को पांच भागों में वर्गीकृत किया गया है। प्रत्येक वर्ग के उपभाग की विभिन्न परिस्थियों का अति सूक्ष्मता से विश्लेषण क्रिया प्रत्येक धारा में ऐसे कारणो और तथ्यो का उद्घाटन एवं प्रस्तुतीकरण किया गया है जो पूर्व कृतियों में इतना स्पष्ट ओर क्रमबद्ध उपलब्ध नहीं। इसी अध्याय के अन्तर्गत भक्तिकाल के विद्वानों और अध्येताओं के काल विभाजनों को लेकर उनके परस्पर के अन्तर और मतान्तर को स्पष्ट किया है। भक्ति युग की इस समयावधि की विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रस्तुत तिथियों की तुलनात्मक तालिकाऐं प्रस्तुत की गई हैं जिस में अपना निर्णय लिया है जो एक नवीन, मौलिक प्रयास एवं तथ्य रूप में निरूपित है।

तीसरे अध्याय में कृष्ण भक्ति काव्य और राम भक्ति काव्य का सामान्य परिचय दिया गया है। सूर और तुलसी से पूर्व जो कृष्ण भक्ति एवं राम भक्ति पद्धति प्रचलित रही तथा उन के गुणगान, प्रशस्ति की परम्परा जिस भी काव्य में स्तुति गान रहा उस को व्याख्यामित किया गया। इन दोनों महाकवियों के अतिरिक्त राम भक्त कवियों एव कृष्ण भक्त कवियों तथा उन के काव्यों की सामान्य रूप से चर्चा की गई है। इस परिचयात्मक गुणानुवाद के साथ कुछ अपनी धारणाऐं भी प्रस्तुत की हैं। जैसे कृष्ण भक्त कवियों तथा उनके काव्य का आकार वृहतर और उस की परम्परा सुदीर्घ रही। दूसरी ओर मर्यादा पुरुषोतम भगवान श्री राम जीवन की समग्रता लिए हुए है। उन का जीवन इतना दृढ़ और गम्भीर है कि सशक्त कवि है। उनके जीवन पर लेखनी उठा सकता था जिसे तुलसी दास जैसे युगद्रष्टा ने ही प्रबन्धात्मकता में गुम्फित किया। उन्होंने उन के जीवन एवं व्यक्तित्व को ऐसे ढंग से अंकित किया कि परवर्ती राम कवियों को कुछ कहने के लिए नहीं छोड़ा। इस के साथ ही दोनों महाकवियों का परस्पर सम्बन्ध स्थापित किया गया।

चतुर्थ अध्याव में दोनों महाकवियों के व्यक्तित्व को लिया गया है। यहां से ही सूर और तुलसी के व्यक्तित्व एवं जीवन दर्शन का सम्बन्ध प्रतिपाद्य विषय और शोध समस्या से सीधा जुड़ जाता है। पूर्व अध्यायों एक पूर्व पीठिका एवं सूर और तुलसी के काव्य के आधार पर जीवन दृष्टि की भूमिका परिपक्क हो गई हैं। व्यक्तित्व का अर्थ क्या है ? व्यक्ति और साहित्य का परस्पर क्या सम्बन्ध होता है ? इसे स्पष्ट किया गया है। दोनो ही महाकवियों का शारीरिक पक्ष, बौद्धिक पक्ष, भावात्मक पक्ष वैज्ञानिक ढंग से लिए गये हैं। भावात्मक पक्ष में सहज प्रवृ-तियां और भावनाएं मनोवैज्ञानिक आधार लिए हुए होती हैं। व्यावहारिक पक्ष एवं चारित्रिक पक्ष में पूर्व स्थापित मान दण्डो एवं जीवन मूल्यो के अनुसार रचयिता के व्यक्तित्व को देखा जाता हैं। शैली पक्ष में रस, अलंकार, अभिव्यंजना कौशल तथा प्रभावोत्पादकता आदि दर्शनीय हैं। सूर ने इन्हीं के आधार पर वैयक्तिक अभिरूचियों के कारण अपना स्वरूप आत्म-केन्द्रित, रसानुभूति निष्ठ बनाया हैं और तुलसी ने व्यवहारिक लोक मंगल एवं कल्याणमय पक्ष सर्वजनीन सुलभ बनाकर सर्वदर्शनीय बनाया। शारीरिक पक्ष में दोनों महाकवियों का जीवन वृत आंशिक रूप से लेते हुए प्रत्येक कवि पर पूर्व किये अनुसंधानो एवं शोध तथ्यो का अध्ययन करके सुनिश्चित धारणाएँ अभिव्यक्त की हैं। तुलसी और सूर के व्यक्तित्व के बौद्धिक पक्ष की शक्तियो पर वैज्ञानिक पद्धति का आश्रय लिया गया है जो एक स्वतन्त्र और मौलिक दृष्टिकोण है। दोनो कवियों के विविध ज्ञान, रूचियां, शौक आदि पर दृष्टिपात करते हुये व्यक्तित्व के सर्वांगीण पक्ष उदाहरण समान्वित सपुपेत है। वस्तुतः जीवन दृष्टि का अभिप्रेत विषय विशिष्ट उपलब्धियों के साथ प्रस्तुत हुआ है जो एक अभूत पूर्व प्रयास है।

पंचम अध्याय में सम्प्रदाय विशेष के सम्बन्धो और सिद्धान्तो को निरुपित किया गया है। सूरदास की नवधा भक्ति, पुष्टिमार्ग एवं वैष्णव सम्प्रदायो के धार्मिक सिद्धान्तो का विवेचन है। वल्लभ सम्प्रदाय, शुद्धाद्वैतवाद की विचारधारा का प्रतिपादन भी किया। इन भक्तो ने ब्रह्म, माया और मोक्ष पर अपनी धारणाओं को किस प्रकार प्रकट किया है। निष्कर्ष रूप में बल्लभ सम्प्रदाय के पुष्टिमार्ग की पद्धति को सारभूत शब्दो में रखा गया है। इसी प्रकार तुलसी दास जी की विचार धारा से सम्बन्धित श्री सम्प्रदाय की व्याख्या की गई है। अद्वैतवाद तथ विशिष्ठाद्वैतवाद दोनो के सिद्धान्तो एवं मत मतान्तरो को स्पष्ट किया गया है। तुलसी दास समन्वयवादी थे इस विचार को लेकर उनके स्वतन्त्र समन्वयवाद सिद्धान्त की भी व्याख्या की है। एकेश्वरवाद वहुदेववाद मोक्ष एवं उनकी दास्य भाव की भक्ति का विषय भी इसी अध्याय में वर्णित है।

षष्ठ अध्याय का सम्बन्ध नैतिक मूल्यो से जुड़ा हुआ है। नैतिक मूल्यो की परिभाषा एवं प्रादुर्भाव, प्रारम्भिक युगीन पारिस्थियो के प्रभाव का उल्लेख करते हुये उस का सम्बन्ध सूर और

तुलसी के साथ जोड़ा है। राम और कृष्ण काव्य में नैतिकता की परिस्थापना एवं नैतिक गुणों का समावेश स्पष्ट किया है। इस के साथ ही काव्यगत नैतिक मूल्यों, सत्य, दान, दया आदि के प्रसंगों को भी दिखाया गया है।

सप्तम अध्याय में सूर और तुलसी का सामाजिक परम्पराओं रूढ़ियों और मूल्यों के प्रति दृष्टिकोण रखा गया है। अपने काव्यों में समाज में प्रचलित विभिन्न प्रथाओं, लोक संस्कृति एवं संस्कारों का जो उल्लेख हुआ है उस का अवलोकन किया है। दोनों महाकवियों के इस सम्बन्ध में जो भी प्रमाण उन के काव्य से उपलब्ध हुये हैं उन्हें निष्पन्न किया गया है। सूर ने अपने पदों में व्रज की प्रचलित प्रथाओं, त्यौहारों एवं रीतियों को वर्णित किया है। उन का वर्णन भावात्मक ढंग से हुआ है। तुलसी ने विविध संस्कारों को वर्णनात्मक शैली में अपने काव्य में समाविष्ट किया है। उस समय की प्रचलित विविध रीतियें एवं लोक परम्पराओं को भी संयत और रोचक ढंग से स्थापित किया है। वस्तुत: दोनो कवियों के लोक संस्कृति एवं सामाजिक रूढ़ियों मान्यताओं का इस अध्याय में वर्णन किया है।

अष्टम अध्याय सूर और तुलसी के कला एवं साहित्य के प्रति दृष्टिकोण से सम्बन्धित है कवि की कवित्वशक्ति, भाव प्रवणता और काव्य सौन्दर्य के दो रूप भाव पक्ष और कला पक्ष होते हैं। दोनो कवियों का कला पक्ष और भाव पक्ष का विवेचन इस अध्याय में है। कला की परिभाषा और सौन्दर्य तत्त्व के आधार पर उन के काव्य में भाषा, शली, गुण और अलंकारों को लिया है जिन के कतिपय काव्य उदाहरण भी स्थापित किये हैं। भाव पक्ष में भावानुभूति और काव्यगत विविध रसों के कतिपय दृष्टान्त देकर दोनो कवियों की रसवत्ता सिद्ध की है। दोनो कवियों की अन्त: प्रकृति और बाह्य उपादानो को भी इसी अध्याय में भाव पक्ष के साथ सम्बन्धित कर के सूर और तुलसी की भावाभव्यक्ति और काव्य प्रवृति का अवलोकन किया है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि सूर तन्मयता में आतमविभोर हुए हैं। उन्हे अपने व्यक्तित्व का कुछ बोध नहीं रहता। तुलसी जीवन और जगत् के बारे में सजग हैं। उनकी काव्य शक्ति जीवन के परिष्कार एवं सुधार करने में लगी रही। समाज के प्रति वह एक क्रान्ति कवि युग द्रष्टा समन्वयवादी विचारधारा को लेकर आए हैं। सूर स्वयं कृष्णमय हो गये हैं। कृष्ण भगवान के रूप पर विमुग्ध होकर उनके साथ आत्मसात् हो गये हैं। युग के नव निर्माण के सम्बन्ध में ही तुलसी की व्याकुलता ने उन्हें जीवन के सम्बन्ध में चिंतन करने और परस्पर के विरोधी तत्त्वो के समाहार में ही तुलसी का काव्य प्रवृत हुआ हैं। उन्होंने शास्त्र को पुस्तक के पृष्ठों से निकाल कर, जीवन में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। तुलसी का काव्य वहुजनहिताय

सोमसी

होता हुआ स्वान्त सुखाय था। सूर का काव्य केवल आत्म परक स्वान्तः सुखाय। काव्य के सृजन में उन की प्रतिभा व्यक्तिवादी रही है।दोनों ही महाकवि अपने इष्ट आराध्यदेव राम तथा कृष्ण के गुणानुवाद में तादात्म्य स्थापित कर चुके हैं। तुलसी का मार्ग कठिन है, संयम से घिरा हुआ मर्यादा मार्ग है। सूर का मार्ग मुक्त है और कहीं कहीं पर उच्छ्रृंखल भी। तुलसीदास जी लोक के प्रति सूक्ष्म पर्यालोचक थे। उनके बीच पैदा होने वाली बुराइयों को तीव्र दृष्टि से देखने वाले थे। सूरदास अपने भाव में मग्न रहने वाले थे। वह अपने चारों ओर की परिस्थितियों की आलोचना करने वाले नहीं। संसार में क्या हो रहा है? समाज किस ओर जा रहा है? इन बातों की ओर उन्हीं ने अधिक ध्यान नहीं दिया।

संक्षेप में तुलसी युगद्रष्टा थे और सूर भाव स्रष्टा थे।

फिर वही परोसा गया

तुलसी रमण।

मधुमती : जनवरी, फरवरी, 1983
गुलेरी जन्म शती विशेषांक
सम्पादक : **डॉ० प्रकाश आतुर**
मूल्य : **३ रुपये**
प्रकाशक : **राजस्थान साहित्य अकादमी सं० 4 हिरणी मार्ग, उदयपुर।**

मधुमती का स्व० इलाचन्द्र जोशी की पावन स्मृति को समर्पित, गुलेरी जन्मशती विशेषांक पढ़ने को मिला, जो देखने मात्र से ही प्रयास को स्तुत्य कहने के लिए बाध्य कर देता है। स्व० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की बाहर भीतर दो भव्य रेखानुकृतियों व एक छाया-चित्र से सुसज्जित यह साफ-सुथरा अंक विशुद्ध साहित्यिक आभा बिखेरता है। दो सौ दो पृष्ठों के इस अंक को पढ़ने का आधा से अधिक काम 'अंकवीथि' देखकर ही खत्म हो गया; क्योंकि कुल पृष्ठों में से लगभग एक सौ बीस पृष्ठों की सामग्री पूर्व प्रकाशित/पठित पाई गई। यह देखकर ऐसा लगता है कि वर्ष के शुरू में ही खासा मोटा यह विशेषांक निकालने के संकल्प को पूरा करने के प्रयास में इतना सारा पूर्व-प्रकाशित छापना पड़ा है और शेष अधिकांश परिचयात्मक सामग्री में पुनरुक्त भी हुआ है।

गुलेरी जी की तीनों कहानियों, तीन बहुचर्चित लेखों और 'झुकी कमान' कविता के अतिरिक्त भी अंक की जो सामग्री स्व० गुलेरी जी के एक मात्र पौत्र एवं उतराधिकारी की पहचान रखने वाले डॉ० विद्याधर शर्मा गुलेरी के माध्यम से ...... मधुमति के आठवें पृष्ठ पर व्यक्त आभार के अनुसार जुटाई गई है वह उन्हीं के सम्पादन में प्रकाशित 'गुलेरी जी की अमर कहानियां' और चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कविताएँ' नामक पुस्तकों में शब्दशः प्रकाशित है। 'चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की साहित्यिक प्रतिभा शीर्षक वाला लेख हिमप्रस्थ, जुलाई, 1980 में छपने के बाद पुस्तक में प्रकाशित हुआ और अब तीसरे दौर में वही खांचा मधुमति में छपा है। समालोचक सम्पादक एवं पत्रकार गुलेरी - लेख भी हिमप्रस्थ जनवरी, 1983 में पूर्व प्रकाशित है।

डॉ० विद्याधर शर्मा द्वारा जुटाई गई यह सामग्री उतराधिकारी के उत्तरदायित्व को निभाते हुए नि:सन्देह जानकारी पूर्ण है; लेकिन जानकारी देने के लिए यदि एक बार काटा गया स्टैन्सिल ही प्रयोग में लाया जाए तो बात साहित्यिक न रहकर अदालती बयान बन जाती है और कहीं आर्थिक पहलू को भी छूती है।

गुलेरी जी को कहानी सम्राट की उपाधि दिलाने वाली कहानी - 'उसने कहा था' को अंक में यथोचित स्थान मिला है। लेकिन जिस कहानी पर फिल्म बन चुकी हो और मूल कहानी भी अंक में छपी हो उसी का 'रेडियो नाट्य रूपान्तर प्रकाशित करना कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता। इसके स्थान पर मंचीय नाट्य रूपान्तर ही होता तो स्कूलों कालेजों और अन्य संस्थाओं में मंचन योग्य बन पाता। ऐसे रूपान्तर दूसरी कहानियों के भी दिये जा सकते थे।

'उसने कहा था' कहानी पर परिचर्चा (?) शुरू करते हुए डॉ० विद्याधर गुलेरी ने इस कहानी की मूल पाण्डुलिपि और पाठ भेद को लेकर गत वर्षों में चर्चित पहलुओं को फिर उठाया है। उनके अनुसार कला भवन वाराणसी में सुरक्षित, यत्र-तत्र अनेकों संशोधनों से भरी पड़ी उक्त कहानी की पाण्डुलिपि को उलट पुलट कर देखने वाले कई अति उत्साही आधुनिक समीक्षक (?) उसे मात्र घूरकर या पूर्वाग्रह से ग्रस्त होकर देखते हैं और फलस्वरूप कहानी उन्हें भ्रामक, पाठ विभेदी तथा त्रुटिपूर्ण लगती है। ऐसे समीक्षकों में डॉ० मनोहर लाल पर उनकी नज़र हमेशा रहती है। यहां यह उल्लेखनीय है कि आलोचकों की दृष्टि में यह कहानी अभी तक बेजोड़ है, फिर भी ये आधुनिक तथाकथित (?) समीक्षक इसे घूरकर या पूर्वाग्रह से ग्रसित होकर देखने का साहस जुटा रहे हैं। शायद गुलेरी जन्मशती वर्ष में यह भी विचारणीय पहलू है।

परिचर्चा के अगले पड़ाव पर डॉ० कमला रंजन ने इसे मनोवैज्ञानिक गुत्थियों को सुलझाने वाली अचेतन ॐ प्रभाव को स्पष्ट करने वाली रागात्मक कहानी की कोटि में स्वीकार किया है। डॉ० मृत्युंजय उपाध्याय ने लिखा है कि कोई आलोचक दावा नहीं कर सकता कि इससे श्रेष्ठ कोई कहानी छपी है। उन्होंने इसकी प्रासंगिकता को भी सिद्ध किया हैं। डॉ० सत्येन्द्र चतुर्वेदी ने कहानी के भाव को अपने ढंग से बताया है। इस दौरान लहणा सिंह का लड़की से उसकी कुड़माई के बारे में पूछना और लड़की का धत् कहकर भाग जाना अधिकांश को प्रभावित कर गया लगता है।

अंक के विवेचन पक्ष की शुरूआत में डॉ० विद्याधर शर्मा द्वारा पूर्वोक्त लेख में स्व० गुलेरी जी के व्यक्तित्व व कृतित्व का आद्योपान्त परिचय है। डॉ० प्रभाकर माचवे ने उन्हें

सर्वगामी, सहजधर्मी समीक्षक कताते हुए लिखा है कि बर्नाड शॉ की भाँति गम्भीर से गम्भीर बातें भी अत्यन्त अगम्भीर शैली में कहने की परम्हरा को भारतेन्दु मण्डल के बाद गुलेरी जी जैसे कुछ गद्य लेखकों ने ही आगे विकसित किया। डॉ० विजयेन्द्र स्नातक ने उन्हें सर्वतोमुखी प्रतिभा सम्पन्न कहते हुए लिखा है कि वे हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने की दिशा में प्रामाणिक सामग्री संकलित कर रहे थे। डॉ० विद्याधर शर्मा ने उन्हें एक अन्य लेख में इन्टरव्यु विद्या और हिन्दी साहित्य में पुस्तक समालोचना को प्रारम्भ करने वाला माना है। अखिल विनय ने गुलेरी जी के संस्कृत भाषा विषयक विचार उद्धृत करते हुए उन्हें बहुमुखी प्रतिभा सावित किया है और श्री झाबर मल्ल शर्मा द्वारा लिखित स्व० गुलेरी विषयक ग्रन्थ के प्रकाशन की नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी से अपेक्षा की है।

डॉ० विश्वम्भर नाथ उपाध्याय का लेख निःसन्देह इस अंक की उपलब्धि है। लेखक ने गुलेरी जी के जीवन के कुछ पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए उनके साहित्य के साथ अपनी स्फूर्त शैली में छेड़-छाड़ भी की है। उन्होंने गुलेरी जी को विशेषज्ञेतर 'मिला जुला' समझकर चलता करने योग्य नहीं पाया बल्कि विद्वान और रचनाकार एक साथ देखा है। डॉ० उपाध्याय ने गुलेरी जी की अंग्रेजों की प्रशस्तियों के रूप में रचित रचनाओं को लेकर उनकी वैचारिकता से सीधी जुड़ने वाली एक अहम बात उठाई है। परतन्त्रता के दुर्दिनों में अंग्रेजी राज के विरोध में जब भारत के अपढ़ ग्रामीण भी देश प्रेम के गीत गाने लगे थे उस समय विचारशील विद्वान एवं मूर्धन्य लेखक गुलेरी :-

अद्याभिषेक्ष्यमाणः श्री जार्ज पञ्चमभूपतिः।
धर्मगोप्ता भारतानां जयताज्जयतात्तमाम् ॥
यानिपंदानि स्वप्ने भारतवर्प्या न लेभिरे पूर्वम्।
तद्दाता तद्सुतः कथं न राजेन्द्र! तैर्वन्द्यः ?

जैसे गीत अंग्रेजों की प्रशस्ति में गा रहे थे। और दूसरी ओर जापान द्वारा साम्राज्यवादी जारशाही (रूस) को पराजित कर दिये जाने पर वे बहुत प्रसन्न होकर इसे एशिया की विजय दशमी कहते हैं तथा राष्ट्रीय वीरता को जगाने वाली 'झुकी कमान' जैसी कविताएँ भी लिखते हैं। ये सब पहलू राष्ट्रीयता के सन्दर्भ में उनकी विचार धारा पर सोचने को विवश करते हैं।

इस उलझाव को हल करने के प्रयास में डॉ० उपाध्याय लिखते हैं कि :- 'गुलेरी जी विद्याव्यसनी, परम्परावादी पंडित थे, अतः उन्हें प्रशस्तियां गढ़नी ही थी; परन्तु उनका हृदय नहीं

है जहां वह भारतीय जनता की दुरावस्था का वर्णन करते हैं या उसे स्वतन्त्रता के लिए ललकारते प्रबोधते या परामर्श देते हैं।' लेखक का यह कह देना उन प्रशस्तियों को गौण मानना है। लेकिन वस्तुतः वे प्रशस्तियां निरर्थक नहीं हैं, बेअसर नहीं है; उनका प्रभाव भी जनमानस पर पड़ा है और वे उनकी वैचारिकता की गवाह हैं। परम्परावादी विद्याव्यसनी की ये प्रशस्तियां कहीं अवसर-वादिता को भी छूती हैं।

कलानाथ शास्त्री ने गुलेरी जी को 'राजस्थान की' कालजयी विभूतियों में शामिल करते हुए उनकी विद्वता और रचना धर्मिता पर प्रकाश डाला है। डॉ० देवेन्द्र कुमार जैन ने अपने महत्त्वपूर्ण लेख में 'भाषा-मनीषी' के रूप में गुलेरी जी का चित्रण करते हुए उन्हें हिन्दी का सम्बन्ध अपभ्रंश से जोड़ने वाला सिद्ध किया है और हिन्दी के प्रवाह की ऐतिहासिक भूमि का विश्लेषण करने वाला पहला भाषा मनीषी स्वीकारा है। डॉ० जैन ने गुलेरी जी द्वारा पाणिनि की इस आलोचना से असहमति व्यक्त की है कि 'उन्होंने भाषा (लौकिक संस्कृत) को प्रकृति मानकर वैदिक संस्कृत को उसकी विकृति माना है।' लेखक ने पाणिनि के पक्ष को भली प्रकार स्पष्ट किया है। नन्द चतुर्वेदी ने गुलेरी जी की रचनाओं से गुजरते हुए उनकी रचनाओं का सोदाहरण परिचय कराया है और 'उसने कहा था' कहानी को फिलहाल नई कहानी के आन्दोलन प्रवाह में अप्रासंगिक नही माना है।

योगेश्वर गुलेरी और रघुनन्दन प्रसाद शर्मा के संस्मरणों के साथ भगवान चौरसिया के काल्पनिक साक्षात्कार में गुलेरी जी के जवाब आज के सन्दर्भ में उनके विचारों पर आधारित बनाने का प्रयास है। साक्षात्कार में राजस्थान के साहित्यकारों एवं कलाकारों का अभिज्ञान परिचय भी मिल सकता है।

इस अंक के सम्पादन में ढील के फलस्वरूप अधिकांश लेखों में व्यक्तित्व व कृतित्व सम्बन्धी पहलुओं का पुनरुक्त हुआ है और सामग्री योजनाबद्ध रूप से एकत्र नहीं हो सकी बल्कि जैसी मिली डाल दी गई है। उनके संस्कृत कृतित्व, तथा कला ज्योतिष पुरातत्व व भाषा विज्ञान आदि विषयों से सम्बन्धित स्फुट विचार या लेख भी दिये जा सकते थे। इस तरह के विशेषांकों के लिए उपयुक्त सामग्री जुटा पाना निःसन्देह टेढ़ी खीर है। इस दृष्टि से इतनी सारी सामग्री एक अंक में प्रस्तुत करने और गुलेरी जन्मशती के उपलक्ष्य में यह शानदार पहल करने के लिए राजस्थान साहित्य अकादमी सराहना की पात्र है। राजस्थान की यह पहल हिमाचल के साहित्यिक परिवेश के लिए मील का पत्थर कही जा सकती है।

(भ्रमर निवास, संजौली, शिमला-171006)

" दशुठण "

बालक राम जसवाल

मानव जब से इस धरती पर अपना अस्तित्व लिए आया, किसी न किसी प्रकार की धार्मिक, सामाजिक क्रिया कलापों से सम्बद्ध है। उसे अपने अपने समाज के रीति रिवाजों के अनुसार जन्म से मृत्यु पर्यन्त उन क्रिया कलापों का अनुपालन करना पड़ता हैं। जिला सिरमौर में इसी प्रकार का एक रीति-रिवाज है जन्म सम्बन्धी। वैसे तो प्रायः हर समाज में जन्म सम्बन्धी रीति रिवाजों का अपने-2 ढंग से पालन किया जाता है, परन्तु जन्म से सम्बन्धी रिवाज जिला सिरमौर (हि०प्र०) में एक विशेष प्रकार का गृह-समारोह होता है जिसे दशुठण कहा जाता है। इस समारोह को बच्चे का जन्म होने के दसवें दिन गांव के स्तर पर मनाया जाता है इसीलिए इस क्रिया विधि का नाम दशुठण पड़ गया है।

जिला सिरमौर के जैतग गांव की 80 वर्षीय श्रीमती तुलसा देवी तथा कुछ अन्य व्यक्तियों से सम्पर्क करने से इस क्रिया विधि का वर्णन निम्न प्रकार से होता है :-

जब बच्चा पैदा होता है तो उस समय यह सुनिश्चित किया जाता है कि लड़का पैदा हुआ है अथवा लड़की। यदि लड़का पैदा हुआ हो तो उसी समय बंदूक से आसमान की ओर एक गोली चलाई जाती है अर्थात फायर किया जाता है। ये गोली खुशी का प्रतीक होती है तथा इसकी आवाज आते ही सारे गांव वालों को स्वतः प्रमाण हो जाता है कि अमुक घर में लड़का पैदा हुआ हैं। परन्तु लड़की पैदा होने की स्थिति में गोली नहीं दागी जाती। इसके साथ ही उस समय गुड़ के एक बड़े ढेले को जिसे भेली कहा जाता है, छोटे छोटे टुकड़ों में तोड़ कर सब को बांटते हैं। तथा जन्म के दो-तीन दिनों के उपरान्त गुड़ की एक भेली प्रसूता स्त्री के मायके भेजी जाती है। गुड़ की भेली के साथ मायके में मिट्टी के बर्तन (घयालु) में घी भी साथ भेजा जाता है। घी बांटा नहीं जाता परन्तु इसे खुशी से ले जाया जाता है।

जन्म के दसवें दिन जिस घर में बच्चे का जन्म होता है की सभी धी-भैंण स्त्रियों तथा अन्य रिश्तेदारों को बुलाया जाता है। दाई को भी उस समय अवश्य बुलाया जाता है। गांव के

सभी स्त्री पुरूष दोस्त सम्बन्धी इस मौके पर उस घर में इकट्ठे होते हैं। घर में पण्डित जी आते हैं तथा हवन करते हैं। हवन में आम की लकड़ी की समिधा पाजा वृक्ष के पत्ते तथा घी जलाते हैं तथा घी में दूध मिला कर आहुति दी जाती है इसके साथ ही नवजा शिशु को पहली बार कपड़े पहनाए जाते हैं तथा बुलाए गये रिश्तेदार शिशु तथा उसकी मां को कपड़े इत्यादि देते हैं। दाई को भी उसी दिन कपड़े दिए जाते हैं। बच्चे को कंगण इत्यादि पहनाए जाते हैं जो उसकी बुआ द्वारा लाए होते हैं। जन्म के दसवे दिन चाहे सप्ताह का कोई भी दिन वार हो उस दिन अवश्य दशुठण मना लिया जाता है। इसके लिए कोई मुहूर्त आदि पण्डित से नहीं निकाला जाता है। दशुठण के सुअवसर पर औरत विशेष गाना गाती हैं जिसको बधावा अर्थात बधाई गीत कहा जाता है। यह बधाई गीत सात विशेष अलग-२ वाक्यों में गाया जाता है जो कि निम्न प्रकार से है :-

१. हां जी पहला बधावा शब्द सुणाईये,
   धरती माता के दरबार शुभ भी रहिए।
२. हां जी दूसरा बधावा शब्द सुणाईये,
   देवी - देवता रे दरबार शुभ रहिए।
३. हां जी तीजा बधावा शब्द सुणाईये,
   अम्मां बावे के दरबार में शुभ रहिए।
४. हां जी चौथा बधावा शब्द सुणाईये,
   ताया ताई के दरबार में शुभ रहिए।
५. हां जी पंजवा बधावा शब्द सुणाईये,
   चाचा चाची के दरबार में शुभ रहिए।
६. हां जी छेवां बधावा शब्द सुणाईये,
   भाई भाभी के दरबार में शुभ रहिए।
७. हां जी सातवा बधावा शब्द सुणाईये,
   दादा दादी के दरबार में शुभ रहिए।

इस बधाई गीत में भगवान से यह प्रार्थना की जाती है कि नवजात बच्चा देवी-देवता माता-पिता, दादा-दादी, चाचा-चाची; ताया-ताई. भाई-भाभी तथा धरती माता के दरबार में सब जगह अच्छी तरह रहे और फूले फले।

दशुठण के दिन ही पण्डित नामकरण करता है। कोई स्वयं ही नामकरण कर लेते हैं। परन्तु प्रायः लोग पण्डित द्वारा बताया गया नाम ही बच्चे को देते हैं। बहुत वर्ष पूर्व बच्चे के

नामकरण के पीछे दिन, वार, महिने, सांय रात तथा दोपहर इत्यादि की भावना होती थी परन्तु अब ये भावना समाप्त प्रायः हो गई है। दशुठण के दिन हवन इत्यादि करने के पश्चात गंगा-जल, गाय का गोंत (पेशाब) तथा दूध को मिलाकर उसका सारे घर में छिड़काव करके घर को पवित्र किया जाता है तथा उस सारी त्रिया के बाद ही सभी को खाना खिलाया जाता है।

बच्चे के जन्म के दस दिनों के अन्दर यदि गांव में किसी की मृत्यु हो जाती है तो दशुठण नहीं मनाया जाता है। और फिर उस मृत व्यक्ति की क्रिया कर्म करके ही दशुठण मनाया जाता है

जब बच्चा सवा महिने का हो जाता है तो प्रसूता स्त्री के मायके वाले उसे 8 सेर चावल एक सेर घी लेकर आते हैं। जब तक बच्चा एक वर्ष का होता है तब तक वह औरत घर में ही रहती है तथा इसके उपरान्त ही बच्चे को लेकर मायके जाती है। मायके वाले उस वक्त बच्चे को चांदी के कंगन तथा माता सहित सभी कपड़े देते हैं। इस प्रकार जिला सिरमौर में दशुठण का विशेष महत्त्व है।

जिला भाषा अधिकारी
(सिरमौर तथा सोलन)
नाहन-173001

काँगड़ी लोक गीतों में छमाहड़ी

हरिकृष्ण मुरारी

लोक साहित्य में लोक गीतों का विशेष महत्त्व है। इनमें संस्कृति के विभिन्न तत्त्वों का कलात्मक रूप दृष्टिगोचर होता है। लोक गीत मानव की प्रसन्नता, दुःख, इच्छा, प्रेम, लालसा और तड़पन की सहज अभिव्यक्ति प्रस्तुत करते हैं। पखड़ु, झंझोटी तथा बारह-मासा लोक गीतों की भान्ति छमाहड़ी में नारी हृदय की करूण व्यथा का श्रृंगारिक प्रेम में सना हृदय विदारक चित्रण मिलता है।

छमाहड़ी को छमाही भी कहते हैं। अर्थात इन लोक गीतों में छः मास का वर्णन मिलता है। इन्हीं लोक गीतों में नारी की विरह की तड़पन का वर्णन है। उसका पति परदेश में चला जाता है। इस विरह स्थिति में वह प्रतिमास होने वाली विशेष बातों को सोचकर अपने पिया को स्मरण करके अपनी तड़पन को प्रकट करती है। इसी विरह वेदना एवं तड़प से इन लोक गीतों का जन्म हुआ। कितनी वेदना, कितनी कसक, कितना दर्द इन गीतों में विद्यमान है। नायिका अपने पति की विरह में अपने मन के दुःख को प्रकट करती हुई गाती है :-

मीह्ला चैत्र आया. मीह्ला चैत्र आया,
फुल फुल्ली रेह्यो ऽ ऽ
नि मेरे फुल्लां दे तोड़न वाले घर वो नयों।
फुल्लां तोड़ी रखां, नि तड़ाई रखां,
हार गुन्दी रखां
नि मेरे हारे दे पह्नण वाले घर वो नयों।

इसी प्रकार बैसाख मास की विशेषता को प्रकट करती हुई कहती है :-

मीह्लां बसाख आया, मीह्ला बसाख आया
दाखां पक्की रेह्यिां ऽ ऽ
नि मेरे दाखां दे खाणे बाले घर वो नयों।

दाखां तोड़ी रखां, नि तड़ाई रखां
कुत्थी चुक्की रखां ऽऽ
नि मेरे दाखां दे खाणे बाले घर वो नयों।

इसी प्रकार ज्येष्ठ मास आरम्भ हो जाता है :-

मीह्ला जेठ आया, मीह्ला जेठ आया
धुप्पां तप्पी रेहियां
नि मेरे पखुए दे झोलण बाले घर वो नयों।

पखुए झोली रखां नि झुलाई रखां
कीलणियां टुंगी रखां ऽऽ
नि मेरे पखुए दे झोलण बाले घर वो नयों।

इसी प्रकार आषाढ़ मास का वर्णन मिलता है :-

मीह्ला हाड़ आया मीह्ला हाड़ आया
नदियां चढ़ी रेहियां
नि मेरे नदियां दे लंघण बाले घर वो नयों।

नदियां लंघी जावां नि लंघाई जावां
तारू रखी लियां
नि मेरे नदियाँ दे लंघण बाले घर वो नयों।

मीह्ला सौण आया मीह्ला सौण आया
रातां न्हेरियां नि ओ ऽऽ
ओ मेरे दिवके दे बालण बाले घर वो नयों।

दिवके बाली रखां नि बलाई रखाँ
दियूटें चुक्की रखां
नि मेरे दिवके दे बालण बाले घर वो नयों।

भाद्र मास को कांगड़ी में काला महीना भी कहते हैं।क्योंकि इन दिनों भरपूर बरसात होने के कारण आकाश हर समय बादलों से ढका रहता है। जिसके कारण सारा वातावरण

काला-2 प्रतीत होता है। इसलिए इस मास को काला मीह्ना कह कर संबोधित किया जाता है। इस मास का वर्णन इस प्रकार मिलता है :-

मीह्ला काला आया मीह्ला काला आया
अम्ब पक्की रिह्यो ऽऽ
नि मेरे अम्बां दे खाणे वाले घर वो नयों।

अम्बां तोड़ी रखां नि तड़ाई रखां
ताकें चुक्की रखां
नि मेरे अम्बां दे खाणे वाले घर वो नयों।

इसी प्रकार एक और छमाहड़ी मिलती है। इसमें लय तथा शब्दों में अन्तर है परन्तु अर्थ वही निकलता है। उदाहरण प्रस्तुत है :-

चैत महीने सब फुल्ल फुल्ले,
पिए बिना फुल्लां न तोड़िए।
तोड़ी ताड़ी रे चल्न मोरी चिन्ता,
बैठड़ा सोच करे मन में।
जद् पिया छोड़ चले माधोवन में,
आग लगे बिन्दराबन में ।

इसमें भी उपरोक्त छमाहड़ी की भान्ति बैसाख में दाख, ज्येष्ठ में तेज धूप, आषाढ़ में नदियों की बाढ़ तथा सावन मास में अंधेरी रातों का वर्णन मिलता है। भादों मास में तिल्लों के फूलों का वर्णन है जो इस प्रकार से है :-

काले महीने तिल्ल जे फुल्ले,
पिए बिना तिल्लां न देखिए।
देखी दाखी रे चल्न मोरी चिन्ता,
बैठड़ा सोच करे मन में।
जद् पिया छोड़ चले माधोवन में,
आग लगे बिन्दराबन में ।

एक और छमाहड़ी मिलती है। जिसमें नायक कृष्ण के मथुरा चले जाने पर नायिका राधा उसकी विरह तड़पन में गाती है। इससे प्रतीत होता है कि छमाड़ी की रचना द्वापर युग में ही हुई होगी। यह भी हो सकता है की बहुत बाद में हुई हो। इसके विषय में सही रूप से नहीं कहा जा सकता। क्योंकि इसमें कृष्ण को ही ले लीजिए। उनके चरित्र की रचनाएं उस युग से लेकर आज तक हो रही है और आगे भी होती रहेंगी।

चैत महीने सब फुल्ल फुल्ले-२
पिए बिना फूल न पाए ऐ।
राधा ओ पुछदी स्ट्टां ओ स्हेलियां,
इस नगरी ते उठी जाणा रामा ऽऽ।

इस छमाहड़ी में भी बैंसाख में दाख, ज्येष्ठ में तीव्र धूप, आषाढ़ में नदियों की बाढ़ का वर्णन मिलता है। सावन मास में काली अंधेरी रात का वर्णणन है परन्तु साथ में कोयल की विरह तड़फन का भी वर्णन है। सावन मास को यहां का जन जीवन लैंरा मास कह भी पुकारता है :-

लैंरे महीने न्हेरियां रातीं-२
कोयल कूकां मारे ऐ ऽऽ
जियां वो तरसे कौयल डाली,
जियां वो तरसे राधा वे।
मोहन बिच मथुरा दे वसदे
कुसजो हाल सणावां वे।

उच्चेयां पिपलां पींगा पावां-२
रल मिल झूटे लाइये ऐ
मैं झूटां तूं देवे झूटेयां-२
रल मिल झूटे लाइये ऐ
मोहन बिच मथरा दे वसदे
कुसजो हाल सुणावां ऐ।

काले महीने लगदी दासी-२

देवी परसण जाणा ऐ

राधा ओ पुछदी सट्ठां ओ स्हेलियां

हट्क लगे क्या खाणा रामा ऽऽऽ।

इसी प्रकार एक और छमाहड़ी मिलती है। जिसमें नायक, नायिका दोनों के प्रश्न उत्तर वर्णन थोड़ा सा भिन्न है। शेष उसी प्रकार से है। चैत्र मास में फूलों का, वैसाख में दाख का, ज्येष्ठ में धूप का परन्तु यहां पंखे की हवा का वर्णन नहीं है, छाते का वर्णन मिलता है। इससे प्रतीत होता है कि उस समय जब छमाहड़ी का जन्म हुआ, छाते का प्रयोग भी होता था। चाहे वह छाता कैसा भी हो। प्रस्तुत है :-

जेठ महीने डोला बुत्यां जे पेइयां,

पेई रेहियां जोरो-जोर भलिए।

असां कद मिलणा,

एह दिन गोरिए बाहर बणदे।

हत्थे दी छतरी गोरिए,

तिज्जो देई भेजगा

असां दा औण न हुंग भलिए।

असां कद मिलणा,

एह दिन गोरिए बाहर बणदे।

इसी प्रकार आषाढ़ में आमों का, सावन में भैंसों के दुध का तथा भादों मास में बही काली अंधेरी रात नायिका को अकेला रसने पर विवश कर देती है। इसी प्रकार की एक और छमाहड़ी है :-

चैत महीने सब फुल्ल फुल्ले-२

पिया प्यारे घर बी नइ।

स्हेलियां सदाई लै त्यारी।

फुल्लां चुगाई लै,

असां दा औण घर बी नई ।

काले - काले कुण्डल प्यारी,

गले बिच डुलदे,

हाखीं बिच जरा बी चल्ली नई ।

इसी प्रकार से यहां अनेक छमाहड़िड़ां केवल बृद्धाओं के कंठों पर ही विराजमान हैं । नई पीढ़ी फिल्मों के प्रभाव के कारण इस ओर तनिक भी झुकाव रहीं रखती । अतः ज्यों-२ बृद्धाओं की जीवन लीला समाप्त होतीं जा रही है, त्यों-२ यह अमूल्य निधि भी विस्मृति के पथ पर धूल चाटती दृष्टिगोचर हो रही है । आवश्यकता है इस अमूल्य निधि के संरक्षण की । इसके लिए युवा पीढ़ी में सांस्कृतिक चेतना का जागरण अति आवश्यक है । अन्यथा इन अमूल्य निधियों पर जितना भी कार्य हो रहा है, केवल शब्द भण्डार तक ही सीमित रह जाएगा । कोमल लय एवं स्वर धीरे धीरे समाप्त हो जाएंगे ।

चिन्तन कुटीर रैत-176208

तै० व जिला काँगड़ा (हि०प्र०)

"सादट्"

विद्यानन्द सरैक

पर्वतों की तरह अटल पेड़ पौधों के समान तपस्वी चट्टान रुपी शरीर धारी, पानी की तरह कोमल तथा सहज में सभी से मिल जुलने की सच्ची भावना वाला हिमाचल वासी इस कलात्मक वसुधा का सच्चा कलाकार है जिसने अतीत से आज तक हर प्राकृतिक विषमता का सामना नृत्य संगीत से करते उस परम पिता परमेश्वर से अपनी मनोकामना पूर्ण करने की सफलता पाई है। मौखिक साहित्य व ऐतिहासिक परम्परा को विभिन्न कलाओं द्वारा अगली पीढ़ी के लिए ज्यों का त्यों सुरक्षित रखा है। जन्म से मरण तक के सभी रिवाजों को संगीत में पीरो कर उसके पीछे सभी प्रकार के रस्मों तथा सामाजिक नियमों का विस्तृत विवरण कलात्मक रूप से अथाह सम्पदा का बण्डार बना रखा है। जिसका नियम न पालन करना ही सामाजिक प्रतिष्ठा मानी जाती थी सामाजिक जीवन पर यदि कभी दैवी प्रकोप होता तो उसका सामना भी लोग नाच गा कर प्रभू कुल देवता की अराधना करके ही किया करते थे।

जैसे कभी सूखा पड़ा तो सिरमौर शिमला के लोग शिरगुल देवता से प्रार्थना करते थे या अतिवृष्ठि होती तो भी बकरा लेकर शिरगुल देवता के मूल स्थान शाया में जाकर प्रार्थना करते थे। कहते हैं कि सूखा हो तो वर्षा हो जाती थी अधिक वर्षा हो तो वर्षा थम जाया करती थी।

इसी प्रकार बच्चे जवान भी सादटू बन कर वर्षा बरसाने के लिए नाच गा कर भगवात से प्राथंना किया करते थे। गरमी के मौसम में यदि वर्षा न हो रही हो तो रात के समय गांव के बूढ़े बच्चे तथा युवक मुह पर राख इत्यादि मल कर सादटू नाचते थे।

ढोल नगारा बजाते भेष बदल कर गांव-2 नाचते गाते ये सादटू बर्षा की कामना भगवान से करते रहे हैं। इनकी ये कोशिश रहती थी कि इन्हें कोई पहचान न पाये। ये स्वागटी गी लोकताल में झूम-२ कर नाचते हुए आधी रात के पश्चात गांव में जाते हैं। गांव की औरतें बूढ़े इन अचानक गांव में प्रविष्ट नर्तकों का अर्ध निद्रा से उठकर अनूठा आनन्द लेते हैं। किसी प्रकार

का उजाला नही किया जाता। बीच में घर की स्याणी औरतें गेहूं के दाने सादटू, को देती हैं तथा साथ पानी के छींटे, किसी गड़वी या गिलास से उन पर डालती है। निद्रा से अचानक उठ कर दर्शकों के लिए ये अंधेरे में स्वछन्द नृत्य अत्यन्त आकर्षण का विषय होता है। वर्षा की इन्तजार सूखे की ये दैवी प्रकोप संगीत की इस अनूठी विद्या से जैसे हार जाया करता था। किसानों का अटूट विश्वास वर्षा प्रदान करता आया है। इस सांस्कृतिक परम्परा ने लोगों को राहत भी प्रदान की है। सादटू गांव-२ में जाकर ये गीत गाते हैं और झूम-२ कर नाचते हैं।

विछेआ देओ मेरी माई
सादटू ठोड़े दो आई।

ये नर्तक कहते हैं ऐ मां हमें भिक्षा दो हम सादटू, ठौड़ नामक स्थान से आये हैं। ठौड़ राजगढ़ के पास गिरी नदी के समीप स्थान है जहां साधू महात्मा रहते थे। आज भी वहां मन्दिर है जहां पर भइया दूज को सिरमौर शिमला के हजारों लोग उपासना के लिए एकत्रित होते हैं।

जेतणे गोयणे दे तारे।
तेतणे घर मांगणे म्हारे॥

जितने आसमान पर तारे हैं आज रात उतने ही घर हम मांगेंगे।

"नाचेंगे कुदेंगे बी पाणी वरसाऐंगे।"

हम नाचगे कुदेंगे इस प्रकार भूमि पर पानी की वर्षा करेंगे।

बूढ़िए लाए राखी ओ सीड़ो।
बूढ़े रा पीटा जेआ रीड़ो॥

बूढ़ी ने सिड़कू घी रात को बूढ़े को खिलाया है अब वह बेवस गोल पत्थर जो मसाले पीसने का होता है के समान विस्तर पर लुड़क रहा है। सिड़कू उवाल पर खस खस का मेशन डालकर बनाई हुई आटे की मोटी मोटी रोटियां होती है। यह यहां का प्रिय आहार है। सादटू देखने सब आए हैं परन्तु बूढ़ा सिड़कू खाकर बेसुध पड़ा है निद्रा में मस्त है।

बूढ़िए लाए राखे चोड़े।
सादटू देखदे बाइड़े पोड़े॥

बूढ़ी जो बुढ़ाके कारण झुक गई है भी सादटू देखने बाहर आ धमकी है। बुढ़ापे के" झुकने की उपमा चड़ी से दी है चड़ी बारीख लतिकाओ से गोल से गोल मोड़ी हुई वस्तु का नाम है जिस पर बर्तन आसानी से टिकाए जाते है यह रिंग की तरह होती है।

डालो ती डालो लाम्पो दो तेलो
सादटू देखणे री खेलों

जरा लैम्प में तेल डालो तब सादटू देखने का आनन्द आऐगा ये कह कर सादटू गांव के मुहल्ले से भाग जाते है ताकि उन्हे कोई पहचान न ले। इस प्रकार दो चार दिन में वर्षा होना सम्भव माना जाता था। सादर नृत्य सूखा से निरटने के लिए देवी बिपता पर सफलता पाने ताथा इस प्राकृतिक विषमता का सामना नृत्य सँगीत द्वारा जन जन का मनोरजन है। पर्वत बासियों ने खूबसूरत तरीको से प्रकृति और परमेश्वर दोनों पर समय २ में सँगीत नृत्य द्वारा विजय पाई है और इतिहास को जीवित रखा है।

आनन्द कुटी खुन्नु
डाकखाना देवठी मझगाँव वाया फागू
जिला सिरमौर

स्याणे रा गलाणा हा

शास्त्री दीना नाथ गौतम

हिमाचल प्रदेशीय लोक गीतों में जहां एक ओर आनन्द-विभोर होना पड़ता है, वहां दूसरी ओर यहां के लोकोक्तिसाहित्य को हृदयगंम करके भी मनुष्य कम शिक्षा ग्रहण नहीं करता। लोक भाषा का सौन्दर्य ही लोकोक्तियों से बढ़तां है। यहां की बोली में **'स्याणे रा गलाणा हा'** (पूर्व ों का कहना है) के अर्न्तगत अनेकों सारगर्भित बातें भरी पड़ी हैं। यह सम्भव है कि इन लोकोक्तियों के बनाने वाले का साक्षर ज्ञान अधिक नहीं हो फिर भी हमें यह मानना ही पड़ेगा कि जिस मस्तिष्क की यह उपज है, वह मस्तिष्क महापुरूषों का ही था। वह तो क्षणभंगूर संसार से चल दिया, परन्तु उसकी वाणी आज लाखों की जुबान पर रहती है। यही नहीं असंख्या लोगों को मार्ग दर्शन करवा रही है।

आज इनका मूल्यांकन करना जनसाधारण के लिए कठिन सा है। जब कभी हमें इनकी आवश्यकता पड़ती है तब हम स्वतः इनका मूल्यांकन करने लग जाते है, परन्तु फिर भी कर नहीं पाते। लोकोक्तियों में जीवन का सार छिपा रहता है। इसको हम दूसरे शब्दों में 'लाख टके की ब ' भी कह सकते हैं।

व्यावहारिकता को दृष्टिगत् रखते हुए एक लोकोक्ति है :-

"खावे पीवे लोक, मार खावे डबोक"।

इसमें समझदार आदमी और बेवकूफ का अन्तर बताया है। कहने का भाव यह हैं कि चालाक आदमी अपना पेट बड़ी चुस्ती और होशियारी से भर लेता है और दण्ड भुगतने का समय आ जाता है तो बेवकूफ ही पकड़ा जाता है।

एक बात और किसी ने बड़े पते की की है :-

काणेरे घरा लग्गी आग दौड़ लंगड़्या तू।
गूंगे पाईरी हाक, सुण टौणेया तू॥

अन्धे के मकान में अचानक आग लग गई। उसको बुझाने के लिए लंगड़े को आदेश दिया गया और इधर गूंगा आवाजें दे रहा है। उसको सुनने के लिए बहरे को आदेश जारी कर दिया

है। अर्थात किसी ऐसे काम के लिए नियय करना जो उससे न हो पाए। यह सर्वथा उस काम का न होना है। अव्यवस्था सर्वदा विनाश की सूचक हैं।

बाबा बाबा बोल्हाएं थे, सदा सुखी रेहेंए थे।
हुण बावे आपु कहाए, ता घणेरे दुख पाए ॥

बाप की उपाधि लेना भी कितनी मंहगे दाम पड़ती है। कहता है- जब हय स्वयं आपू-2 पुकारते थे तो हमेशा सुखपूर्वक जीवन बिताया करते थे। अब जब स्वंय मुन्ने के बाप कहलाए तो लाखों आपदाओं का सामना करना पड़ रहा हैं। इस सयय किसी का बाप बनना दुखों को मोल लेना है। परिवार नियोजन की सूझ-बूझ भी इसमें नज़र आती है।

किसानों के काम को देखकर किसी ने कहा है-

पंचस्नानी महाज्ञानी रोज नहाए दलिद्री।
जो हाथ मुँह धोए, से टबरा जो जगोए ॥

फसल के मौसम पर जो केवल पंचस्नान करे अर्थात केवल दो पांव दो हाथ और एक मुंह को ही धोये, वह खेतीबाड़ी का प्रकाण्ड पण्डित माना जाता है और जो उस समय हर रोज नहाता है वह तो महा दरिद्र माना जाना चाहिए। जो केवल एक मुंह तथा दो हाथों को ही धो पाता है वह तो परिवार का पालन-पोषण अच्छी तरह करेगा। ठीक भी है जब किसान का फसल बोने अथवा काटने का समय आता है तो उसका एक-एक क्षण भी मूल्यवान होता है।

कौन मनुष्य कैसा होता है? इस विषय में एक उचित बात बताई गई है :-

कांणा लंगड़ा टणेपरा टेढी मुंडकी होए।
तिन्हाने गल तां करनी जे पैरा जुती होए ॥

अन्धा, लंगड़ा और जिसकी आंखों की यथा स्थान स्थापना ठीक न हो और जो मनुष्य टेढ़ी चाल चलता हो उन से वाद-विवाद तभी करना चाहिये जब पांव में जूतियां डाली हों अन्यथा उन से बच कर रहना ठीक है। समाज के व्यवहार पर एक टिप्पणी है :-

"खावो पीवो करा नन्द मान्डे मांजो परमानन्द"।

कहीं-कहीं ऐसा भी होता है कि लोग खा-पी कर आनन्द लेते हैं और जूठें बर्तन फिर

परमानन्द के हवाले कर देते हैं। एक अन्य जोलोक्ति इस प्रकार है :-

"आंटा चन्दारा नदा क्या पईरी" ।

चन्द और नन्द दो भाई थे । चन्द बेचारा इधर-उधर से मेहनत का पैसा कमा कर लाता और नन्द अबारा बन कर खाता पीता और खूब आनन्द लेता ।

भारतीय परिवारों में विशेषकर हिन्दु परिवारों में दाभाद की स्थित का लोकोक्ति में अंकन इस प्रकार है :-

"दसवां ग्रह जवांई" ।

ज्योतिष वालों के मतानुसार नौ ग्रह तो होते ही हैं परन्तु गृहस्थाश्रम में दसवां ग्रह दामाद भी होता है, जिसको खुश करना सब ग्रहों से कठिन होता है ।

अन्य किसी व्यक्ति की किसी वस्तु को जब लापरवाही से उपयोग में लाया जातां है तो कहते हैं :-

"चोरारे कपड़े ता लाठी रे गज"।

अर्थात् चोर जब किसी दुकान से कपड़ा चोर कर लाता है तो लाठी का गज बनाकर बेचा करता है क्योंकि उसमें उसका क्या जाता है ।

जिम्मेदारियों के सिर पर टूटने के वक्त मनुष्य का क्या रूख रहता है इस पर लोकोक्ति है।

गला पईरी ढोलकी ताला-तूलारा हसाब नी ।

जब गले में ढोल पड़ जाता है तो ताल बजाने की होश अनजान की क्या रहेगी । यहां पप उपदेशक का व्यंग्य गृहस्थ जीवन पर लगता है । जब एक अनजान युवक पर घर की जिम्में-दारिमां आ जाती हैं तो वह केवल गाड़ी चलाने की ही करता है ।

अनुचित मांग पर एक लोकोक्ति है :-

छोरू रोंएं छायिया जो
बूढी मांघा ही पनीर ।

घर में बच्चों को दूध तो क्या लस्सी भी नहीं मिल रही है। किसी वस्तु की मांग समय को दृष्टिगत रखते हुए ही करनी चाहिए। सोच समझ कर ही कदम रखना चाहिए। लोकोक्ति यूं है :-

"गईरा भूलीरा कोहारा फेरा"

एक कदम का भूला हुआ मनुष्य कोसों दूर के सफर में पड़ जाता है।

संकट की चरम सीमा पर एक लोकोक्ति है :-

"मैंइस गईरी सारी ढीगा जो, फुंड्टा क्या लाणा वाल"

भैंस अगर कहीं पहाड़ी से गिर रही हो तो उसकी पूंछ पकड़ कर वह कैसे बचाई जा सकती है। 'होनहार बिवान के होत चीकने पात' का भाव पहाड़ी बोली में यूं लक्षित है :-

"धानारे देस पराला थे ही सूझी जांहें"

इस वर्ष कितने धाने हुए यह अन्दाज उसके भूसे से ही लग जाता है न।

हां आदमी अपने हाथों किए गए कार्य को महत्व देता है। इस विषय में कहावत है :-

"अपने रागे राग होरीरे रागा फूंकों आग"

अर्थात् अपने गाए गए राग में ही मनुष्य को आनन्द आता है भले ही स्वर-ताल का उसमें अभाव हो। दूसरों के गाए राग का उसकी नज़रों में महत्व नहीं।

"होरी जो ज्ञान अपु जो गोहटे"

तुलसीदास जी के शब्दों में यूं कहिए "पर उपदेशक कुशल बहुतेरे"। दूसरों को ही आदमी सलाह देता है, भले ही अपने घर अन्धेर नगरी और चौपट राज ही क्यों न हो गया हो।

दैनिक व्यवहार में लेन देन की बात यूं है :-

"मूल्ले मछली दाने घोड़ा"

व्यवहार में एक मछली का भी मूल्य लेना चाहिए। इसी प्रकार जब दान करना हो तो भले ही घोड़ा भी दे देना चाहिए।

अनावश्यक चतुराई पर कह दिया जाता है :-

"पौह महीने जमेंया साऊणारी देणी खबरां"

अर्थात् पौष महीने में अभी लड़का पैदा ही हुआ और इससे भी पूर्व श्रावण मास की खबरें सुनाने लग गया। जन्मे बाद में और समाचार उससे भी पहिले के सुना रहे हैं।

अनुभव के लिए मनुष्य को ठोकरें खानी पड़ती हैं :-

"अन्धा जाऊ तिक मुडनी लगेया कन्धा"

अन्धा भी लापरवाही से चलता है जब तक सिर दिवारों से नहीं टकराता है। जब सिर दिवारों से टकराता है तो स्वंय होश ठिकाने आ जाती है ।

साधनों से ही सिद्धि है, अन्यथा लोग यह भी तो कह ही डालते हैं :-

"कल मढ़ाई ढोलकी आज बणी गया कबिया"

कल हमारे सामने ढोलक बनवाया आज देखो तो महान गायक तथा वादक बन गया ।

ब्राह्मणों के व्यवहार पर ली गई एक चुटकी इस प्रकार है :-

"जजमान व्याहो खोतड़ी जो,
ब्राह्मणा जो दच्छणा साऊगी काम ।

ब्राह्मणों के लालचपन व स्वार्थ परायणता का स्पष्टीकरण इसमें बड़े अच्छे ढ़ंग से किया गया है । जैसे कहा है कि यजमान वेशक गधी से शादी कर ले ब्राह्मण व पुरोहित तो केवल दक्षिणा से ही मतलब रखता है ।

एक अन्य कहावत है :-

"गांठी नी गोबर लड़ने जो बरोबर"

किसी पर व्यंग्य है कि गांठ में देखो तो न तलवार, न बन्दूक इत्यादि गाय का गोबर भी किसी के मारने के लिए नहीं है । फिर भी लड़ाई की धौंस दे रहा है ।

ऐसे "कुत्ते का कुत्ता वैरी" वाली कहावत का यहां की लोकोक्ति रूप देखिए :-

जाती वे जात धोती वे धात
मांहूणू जो मांहूणू, डाला वे वीण्डा ।

अर्थात् हर वस्तु सजातीय वस्तु को ही नुकसात पहुंचाती है जैसे लोहे को लोहा ही काट सकता है । इसी प्रकार एक प्रकार का प्रमेह रोग जिसको लग जाता है उस पर दूसरे प्रमेह भी शीघ्र बन जाते हैं । आदमी को आदमी ही नुकसान पहुंचाता है । जैसे जंगल से ही एक लकड़ी का डण्डा लगा कर उसको कुल्हाड़ी में फंसा दो फिर, वहीं कुल्हांड़ी सारे जंगल को समाप्त करने की सामर्थ्य रखती है ।

एक स्थान पर किसी ने कहा :-

"जेहड़ी मां तेहड़ी धी"

जैसी किसी की मां होगी अधिकांशतः बेटी भी वैसी ही होगी, क्योंकि मां का संस्कार लड़की पर विशेष रूप से पड़ता है ।

समय की धांधली पर चुटकी इस प्रकार ली गई है :-

"लंघी गए ता हाथी पकड़ाई गई ता सूई"

यह आक्षेप किसी ने कानूनी व्यवस्था पर किया गया है । अगर कानून की नजर से कोई भी विषय गुप्त रहा तो बच गए भले ही कोई खूनी क्यों न हो । यदि कोई कानून की नज़रों में चढ़ गया तो भले ही किसी ने सूई की चोरी क्यों न की हो, उसे भी जेल की हवा लग जाती है ।

तोपी कन्ने धन होर
मांगी कन्ने मौत नी मिलदी ।

अर्थात् तलाश करने से गढ़ा हुआ धन नहीं मिला करता है और मांगने पर मौत नहीं मिला करती । क्योंकि ये दोनों बातें भाग्य के अनुसार ही प्राप्त हुआ करती है । इसी तरह :-

"ध्याड़ी जो सुतीरे राती जो जागदे"

इस कहावत में उन लोगों पर व्यंग्य किया गया है जो लोग दिन भर कोई कार्य नही करते रात को अफरा-तफरी मचाते हैं ।

शास्त्री दीना नाथ गौतम
विहार राष्ट्र १७५००१ मण्डी (हि० प्र०)

ऊपरी महासू क्षेत्र में बिशु का त्यौहार

पन्ना लाल जोगटा

उत्सवों एवं मेलों का हिमाचल प्रदेश में प्राचीन काल से विशेष महत्व रहा है। इस प्रदेश का ऊपरी महासू क्षेत्र मेले-त्यौहारों के लिए विशेष रूप में प्रसिद्ध है। किसी मास की बिरली ही कोई सक्रांति होगी जो किसी न किसी त्यौहार के रूप में नहीं मनाई जाती होगी। पौष से चैत्र मास तक यह क्षेत्र हिमाच्छादित रहता है तथा देश के अधिकतर क्षेत्रों से इन क्षेत्रों का सम्पर्क कटा रहता है। समययापन के लिए बड़ों-बूढ़ों ने विशेषकर इस समय के लिए कई प्रकार के उत्सवों, त्यौहारों एवं मेलों के आयोजन की प्रथा प्रचलित की थी। इस अवसर के मुख्य त्यौहार १५ पौष, पौष-माघ की सक्रांति मगनाऊण माघ-फाल्गुन की सक्रांति बिशड़ी, महा शिवरात्री तथा चैत्र, - बैशाख की सक्रांति बिशु उल्लेखनीय है। इनमें भी माघ की मगनऊण एवं बिशु प्रसिद्ध वार्षिक उत्सवों के रूप में मनाया जाता है। १५ पौष को विशेष पकवान बना कर हरिजनों में वितरित किये जाते हैं। लोगों की आम धारणा है कि पौष मास में देवी देवता स्वर्ग जाते हैं जहां उनको वर्ष-फल वितरित किया जाता है। किस देवता को भगवान से क्या कुछ मिला है यह बातें मगनाऊण दिन देवता अपने माली (विशेष व्यक्ति जो देवता द्वारा कथ्य परीक्षा बातों को सार्वनजिक रुप में व्याख्यान करता है जिसे "ओत्रना" अथवा "हिंगरना" कहते हैं द्वारा देवता अपनी प्रजा को सुनाता है जिसे "बखाण" कहते हैं जो सम्भवतया हिन्दी रुपान्तर व्याख्यान का ही विकृत रुप है। बखाण में पूरा-पूरा विवरण उदाहरणतया कितने मनुष्य की देवता की प्रजा से मृत्यु सम्भाव्य है। उनमें कौन कौन प्रमुख हैं, साल फसल, बीमारी, ओलावृष्टि इत्यादि के विषय में पूर्ण विवरण दिया जाता है। इसके अतिरिक्त इस अवसर को सर्व-साधारण जनता विशेष पकवान के रुप में मनाते है जिसमें मांस, तथा इससे सम्बन्धित अन्य खाद्यानों का प्राधान्य रहता है जिसमें खोबली तथा सीगड़ी पकवान प्रसिद्ध हैं। खोबली के अन्दर बकरे की चर्बी अथवा अफीम दाना डालकर उसे पानी में पकाया जाता है। इसी प्रकार सीगड़ी भी एक मोटी रोटी होती है जो खाने में अत्यन्त स्वादिष्ट होती है। वर्ष के अन्य प्रमुख उत्सवो में आषढ़-श्रावण मास की संक्रान्ति पशु- मेले के रुप में मनायी जाती है। इस अवसर पर पशुओं को एक स्थान पर ।एकत्रित किया जाता है। तथा सभी ग्रामवासी सामूहिक रुप में नमक, भोजन इत्यादि पशुओं को खिलाते हैं। इस समय नृत्य एवं अन्य रंगा रंग कार्यक्रम का भी आयोजन किया जाता है श्रावण- भाद्रपद कीं सक्रान्ति को भूमि-पूजन रात्री के रुप में मनाया जाताहै। इस उत्सव पर लोग अपने खेतों से भूमि का टुकडा लाकर उसका पूजन करते हैं तथा उस पर पत्थर रखकर रात्री भर आग जलाते हैं एवं अनाज

बीजते हैं। जब अनाज उग कर कुछ लम्बा होता है तो उसे सादर अपने खेतों में भूमि गत करवा देते हैं।

बिषू का उत्सव चैत्र -बैशाख जिसे बेशाखी भी कहते हैं बड़े धूम धाम से मनाया जाता है। इसी समय ग्रीष्म ऋतु का शुभारम्भ तथा बसन्त का अन्तिम चरण होता है ढलानों पर बने जो गेहूं से हरे भरे खेतों में महिलायें उन्मुक्त एवं निश्चित भाव से टोलियां बनाकर "दशी" गीत के ऊंचे बोलों में तन्मय होकर गा उठती हैं ;-

कूपू माथो घुमाते राजा रे राणे, अच्छो कियो कूपूआ ऋत बशैखे आणे।
नाहीं गाए सावणा नाहीं गाए पोष की राचे, भरा गाए जेठा दे जौआ ढ़ले गीऊंआ द्राचे

उन्मुक्त भाव में नारियां अपनी तुलना पक्षीराज कूपू तथा उनकी रानी घुगति नामक पक्षियों से करते हुए कहती है कि पक्षीराज ने पक्षियों के प्रजनन हेतू यह अत्यन्त उपयुक्त एवं सुहाबने अवसर का चयन किया है। इस तर्क के पर्श्व में यह धारणा हैं कि पक्षियों ने किसी समय पलाश को अपना राजा चयनित किया था और गोष्ठी में यह निर्णय लिया गया था कि जब राजा बोलना प्रारम्भ करे तो पक्षी अण्डे डालेंगे। पलाश ने पौष माह में बोलना प्रारम्भ किया तदनुसार सारे पक्षियों ने अण्डे डाले परन्तु अत्यधिक शीत के कारण सब अण्डे नष्ट हो गये। निराश होकर पक्षियों ने नये राजा चयन के लिये दुबारा गोष्ठी का आयोजन किया जिसमें पक्षीराज के पद पर कूपू को विभूषित किया गाया कूपू ने विषू वाले दिन अपनी ध्वनि कूपू-कूपू बोलना प्रारम्भ किया तथा पक्षियों ने भी उसी समय अण्डे डालने आरम्भ किये। गर्मी के कारण अण्डों से पक्षियों की समुचित बंशवृद्धि हुई इसलिये उपरोक्त गीत में महिलाओं ने पक्षीराज कूपू को सन्दर्भ देकर इस अवसर को सुख-समृद्धि के रुप में प्रतिपादन किया है। इस पुण्य अवसर पर हर्षोल्लास में लोग विशेष प्रकार के पकवान बनाते हैं जिनमें पोल्डु (तिल के बीच तला गया कणक की गोलाकर रोटी), बड़ा; हलाव इत्यादि बनाते हैं। हरिजन लोग देवी-देवताओं, राजपूत एवं अन्य स्वर्ण जातियों के यशोगान गोलाकार नृत्य में गाते हैं। तथा स्वर्ण जातियाँ पारितोषिक के रुप में इस अवसर पर बने विशेष पकवान, धन तथा कपड़े नृत्य - मण्डली को प्रदान करते हैं। नृत्य दल के मुखिया के सिर में कपड़ों को गोलाकार रुप में बांधते हैं जिससे मुखिया का सिर कपड़ों कीं गठ सा भारी प्रतीत होता है। इस प्रकार का नृत्य सामूहिक रुप में ग्राम के एक केन्दीय स्थल जो प्राय: खलियान होता है, पर प्रदशित किया जाता है तथा सभी ग्रामवासी उपस्थित होकर बड़े ध्यानपूर्वक इस सामुहिक गान का श्रवण करते हैं। सर्वप्रथम गान का मुख्य विषय जनता पर देवी- देवीताओं की कृपा तथा प्रकोप, उन द्वारा पुरातन काल से किये गये मुख्य कार्यों तथा अवांछित एवं समाज - विरोधी तत्वों की नष्ट लीला इत्यादि का सरस वर्णन होता है। सामूहिक गान में नृत्य मण्डली गान की लय में तल्लीन ढोलक, खंजर इत्यादि वादय यन्त्रों का

प्रयोग करती है। गीत के ये बोल कितने सरल एवं उल्लासपूर्ण लगते है तनिक देखें तो :-

विशू लागो रिंजटी कुम्भा रो मेला भाईयो
नव-नव बईया बिशू खो चाला भाईयो।

एकी हाथा खोकरे दूजा रमाला भाईयो।
विशू लागो रिंजटी कुम्भा रो मेलो भाईयो---२---

उपरोक्त लोक गीत के भाव हैं कि बिशू यह का यह त्यौहार इतनी धूम धाम से मनाय जा रहा है कि मानो हरिद्वार का कुम्भमेला हो। इस मेले में ग्राम के नवयुवक नाचते गाते जा रहे हैं। नवयुवकों के एक हाथ में गोरखों की खुखरी नामक शस्त्र है तथा दूसरे हाथ में नृत्य करने के लिए रुमाल है। उनकी इस प्रकार की मुद्रा साक्षात नटराज सी लगती है।

उपरोक्त सामूहिक गान के पश्चात् ग्राम के प्रमुख व्यक्तियों का भी यशोगान किया जाता है। जो भी ग्रामीण पगडी या पैसे देता है उसका धन्यवाद गीत माध्यम द्वारा किया जाता है। प्रतिकूल परिस्थितियों में यदि कोई ग्रामीवासी समूह गान को सुनने नहीं आता या नृत्य-मण्डली को दान-दक्षिणा नहीं देता है तो उसकी मीठी भर्तसना भी की जाती है। उपरोक्त

दोनों प्रकार के उदाहरण अधोलिखित हैं :-

लम्बे-लम्बे ओजरे रा खूंगटा रा कोली
मुखे दीणी निकरामा बेड़ूई पौली ॥

भावार्थ : हम लम्बे-लम्बे वाल काले खूंगटा गांव के कोली जाती से सम्बन्ध रखते है हमें निक्का राम ग्रामवासी ने अफीमदाने से मिश्रित रोटियाँ प्रदान की हैं।

मेरा ते मोतीलाला का बहुता आशा।
एकी रुपयेआ देआ चाणो नराशा ॥

अर्थात् : नृत्य मण्डली को मोती लाल से जो एक धनवान परिवार से सम्बन्ध रखता है से अच्छी राशि प्राप्त होने की पूर्ण आशा थी परन्तु उन्होने एक रूपया देकर हमें सर्वथा हताश कर दिया।

बिशू के पुण्य अवसर पर किसी एक अथवा कुछ ग्रामों के हरिजन सदस्य उस ग्राम से किसी अन्य ग्राम अथवा घोड़ी में विवाहित युवति के यदि पुत्र-रत्न उत्पन्न हो तो भान्जे की बधाई देने उसके ससुराल पहुंच जाते हैं। आने की सूचना कुछ दिनों पूर्व दी जाती है ताकि युवति के ससुराल वाले अपना प्रबन्ध समयानुसार कर सकें। इस अवसर पर हरिजन - वर्ग को खान-

पान, मद्य-सेवन, शयन इत्यादि का पूर्ण प्रबन्ध किया जाता है। इस सम्बन्ध में अतिथियों पर व्यय युवति के ससुराल वाले ही करते हैं परन्तु शयन इत्यादि को प्रबन्ध के लिए अन्य ग्रामवासी भी अपने यहां अतिथियों को बुलाकर उनका समुचित आदर करते हैं। बेटे की बधाई लेने के पश्चात् नृत्य मण्डली हर्षोल्लास तथा गायन-वादन के साथ वापिस लौट आती हैं।

इसी प्रकार बिशू का यह ऊत्सव उपरी महासू क्षेत्र में बड़े धूम-धाम के साथ मनाया जाता है। जिसके स्मृति-संकेत ग्रामीण जन्ता के स्मृति-पटल पर बहुत दिनों तक अंकित रहते हैं।

निदेशालय उद्यान विभाग,
हिमाचल प्रदेश,
नौबहार शिमला-१७१००२

"महर्षि जमदग्नि के आश्रम नुमा मलाणा गाँव में" आदिवासी जन-जीवन

तेज राम ठाकुर

भगवान् की इस अद्भुत सृष्टि में मानव का स्थान सर्वोपरि है, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वह सदैव संतोष व शान्ति प्राप्त नहीं कर पाया है, वह कुछ न कुछ खोज में संलग्न है, उसकी रुचियाँ भी विभिन्न हैं, किसी का आध्यात्मिक क्षेत्र में, किसी का मन वैज्ञानिक खोज में, तथा किसी की रुचि साहित्य के स्वाध्याय में, किसी का चाव तीर्थ-यात्राओं व नवीन स्थान के दर्शन करने का है।

प्राकृतिक सौन्दर्य का चाव भी मानव को सदैव अपनी ओर आकर्षित करता रहा है, यह सौन्दर्य मानव के लिए एक रहस्य की भान्ति बना हुआ है । प्राकृति के सुष्मा-भण्डार को देखने की लालसा उठना, मानव की एक सहज् विनोद-प्रिये प्राकृति रही है ।

हिमाचल प्रदेश हिमालयांचल है । यहां की प्रत्येक उपत्यका में प्राकृति ने असीम व अद्भुत सौन्दर्य बिखेर दिया है। पग पग पर यहाँ बिराट के दर्शन हैं। इसी प्रदेश की एक सुन्दर उपत्यका कुल्लु-मनाली है । जिसे देव भूमि के नाम से पुकारा जाता है । इस देव भूमि में प्राकृति ने सुरलोक सी छटा प्रदान की है । प्रत्येक पग पर देवताओं व ऋषियों के आश्रम हैं ।

इस देव-भूमि कुल्लु में कई लघु उपत्यकाएं अपनी सुन्दरता व अद्भूतता से एक दूसरे से होड़ कर रही सी प्रतीत होती हैं। इन्हीं सुन्दर उपत्यकाओं में से एक **"पार्वती घाटी"** है । जो कुल्लू से भून्तर नामक स्थान से होते हुए मनिकर्ण की ओर लगभग चालीस किलोमीटर लम्बी सुरंग जैसी घाटी में फैली है ।

इसी घाटी के एक ओर महर्षि जम दग्नि का आश्रम नुमा मलाणा गांव है । सोलह अगस्त १९८१ को मैं और मेरे अन्य पांच सहयात्री इस आश्रम को देखने के लिए चल पड़े ।हम सब कुल्लु से लगभग नौ बजे एक मिनी बस द्वारा भून्तर नामक स्थान से पुल पार करते हुए लगभग बारह बजे **"जरी"** नामक स्थान पर पहुंचे यहां से यह बस मनिकर्ण नामक स्थान की ओर जाने वाली थी, जबकि हमारा पथ इस **"पार्वती घाटी"** की एक कन्दरानुमा घाटी की ओर था ।

पहाड़ी नदी व झरनों का विभिन्न रूप :

यह रास्ता "**जरी**" नामक स्थान से नीचे की ओर ढलान पर था, जो नीचे पार्वती नदी पर बने पुल तक जाता था । पुल पार करने के पश्चात् हम मलाणा गांव वाले मार्ग की ओर चल पड़े ।

थोड़ी दूर जाने पर एक कर्ण भेदी शोर सुनाई दिया, थोड़ी दूर चलने पर मालूम हुआ कि एक छोटी सी नदी अपना भिन्न सा अस्तित्व बनाती, पर्वतों की इन मालाओं को तोड़ती हुई, बड़ी ही शीघ्रता व उग्रता के साथ शोर मचाती हुई अपनी बड़ी बहन "**पार्वती नदी**" की गोद में समा जाने को उत्सुक थी "**पार्वती घाटी**" की यह "**पार्वती नदी**" भून्तर के स्थान पर ब्यास नदी में जा मिलती है ।

यह आश्रमनुमा मलाणा गांव 'जरी' से लगभग पन्द्रह सोलह किलोमीटर दूर होगा, ऐसा अनुमान ही है यह रास्ता विशेष कठिनाई भरा नहीं है, तथा नदीं तट के साथ-२ बना हुआ है । स्थान-स्थान पर मीठे व ठण्डे जल के स्रोत हैं, जो यात्रीयों की थकावटों को हर लेते हैं । इस पहाड़ी रास्ते के हर मोड़ पर नदी का उग्र रुप देखकर ऐसा आभास हो रहा था, कि पहाड़ों की हृदेश्वरी यह छोटी सी नदी, इन से रुष्ट होकर, अत्यधिक रौद्र रूप धारण कर क्रन्दन-रुदन कर अपने विशाल हृदय पिता, सागर के घर जा रही हो ।

ऊचे ऊंचे पर्वतों के गर्भ से निकलती हुई श्वेत-गंगा छल-छलाते झरनों तथा नालों को अपने साथ ले जाती, उछलती, कूदती अपने अनेक रुप दर्शाती मानव-मन को 'अद्भुत' रसानुभूति में डालकर अति मनोमुग्धकारी हृदय बनाती अपने गन्तव्य की ओर जा रही थी ।

सीढ़ीनुमा सीधी चढ़ाई :

लगभग बारह तेरह किलोमीटर चलने के उपरान्त जब हम सब सहयात्री ऐसे स्थान पर पहुंचे, जहां से आगे का रास्ता लगभग सीधा लम्ब रूप में था । इस नासिका-नुमा पहाड़ी के दोनो ओर गहरी खाइयां हैं, इस पहाड़ी पर घुमावदार सीढ़ी नुमा रास्ता बनाया गया है । किसी-किसी पहाड़ी मोड़ पर बडी सावधानी से चलना पड़ता है, यदि किसी असावधानी से पथिक का पांव ऐसे स्थान से फिसल जावे, तो सैंकड़ों मीटर नीचे अतल गंगा में जल-समाधि लेने की पूरी-पूरी सम्भावना रहती है ।

प्रकृति के इस अद्भुत कौशल को देखते व आनन्द लेते, हंसते हंसाते हुए, सांध्य के लगभग सात बजे का समय रहा होगा, जब हमें मलाणा गांव का दर्शन सुलभ हुआ, उस समय हमारी प्रसन्नता का कोई पारावार नहीं था ।

पर्वतों की सुखद गोद में बसा आश्रम नुमा मलाणा गांव :-

प्रातः का समय यहां एक अलग ही वहार लिए हुए था। चारों ओर हरियाली से भरपूर ऊंचे-ऊंचे पर्वत तथा इनसे भी उच्च शिखरों पर, जहां हिम राशि का विपुल भण्डार था, प्रातः की स्वर्णिम किरणें इस धवल स्वच्छ चान्दी सी चादर से परावर्तित होकर, आस-पास के वातावरण को शान्त व सुखमय बना रही थी।

कहीं धूप, तो कहीं छांव, कहीं हरियाली और कहीं किरणों का सतरंगी नाच, हरियाली से लदे इन अनुपम सुन्दर पर्वतों की सुखद पुण्यस्थली में यह आश्रम नुमा मलाणा गांव शोभायमान है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :-

यहां की जन श्रुत्यानुसार इस गांव में आदि युग से लेकर वाणासुर नामक राक्षस का निरकुंश शासन था। स्थानीय जनता इस राक्षस से अति आंतकित थी।

हमारे प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक ग्रन्थों तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थों में वाणासुर नामक राक्षस का नाम कई बार आया है। विश्वस्त रूप से यह कहना कठिन है, कि इन ग्रन्थों में चर्चित वाणासुर यही था या कोई अन्य वाणासुर की बंश परम्परा से रहा होगा, कुछ ठोस आधार पर कहना कठिन है।

वाणासुर के राज्य में महर्षि जमदग्नि का पादार्पण :-

एक बार महर्षि जमदग्नि अपनी भार्या के साथ भ्रमण करते हुए इसी वाणासुर के राज्य की सीमा चन्द्रखणी नामक पर्वत पर पधारे इसी पर्वत के दामन में यह गांव स्थित है। जिसे आज कल मलाणा कहते हैं। इससे पूर्व इस गांव का क्या नाम था, यह अभी खोज का बिषय है।

जब महर्षि के आगमन का समाचार वाणासुर को विदित हुआ, तो उसने धोखे से राक्षसी माया के प्रभाव से महर्षि को पकड़कर कारागार में डाल दिया। तत्पश्चात एक उबलते पानी के वर्तन में डाल दिया। ऊपर से ढक्कन लगाकर वन्द कर दिया, कुछ समय के पश्चात् वर्तन खोल कर देखा गया, तो महर्षि शान्त चिन्त से ध्यानावस्थित थे। उबलते पानी का उन पर लेश मात्र भी प्रभाव न था, इसी प्रकार बार-बार प्रयत्न करने पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा, तो तो वाणासुर महर्षि की योग व तप शक्ति से प्रभावित हुआ, तत्पश्चात् भयभीत होकर अभयदान के लिए महर्षि के चरणों में गिरकर क्षमा-याचना करने लगा।

महर्षि उसे क्षमा न ही करना चाहते थे। क्योंकि स्थानीय जनता इस राक्षस के व्यवहार से अति क्षुब्ध थी। दयालू महर्षि ने उसे अभयदान तो दे दिया, परन्तु इसे इस जनपद से ऐसे स्थान पर चले जाने के लिए विवश किया, जो नितान्त जन शून्य हो।

वाणासुर ने भी प्रस्थान से पूर्व महर्षि से एक शर्त स्वीकार करवा ली, कि इस जनपद में वाणासुर की ही भाषा व संस्कृति (पैशाचिक वृति) प्रचलित रहे किसी भी युग में मेरी भाषा व संस्कृति के स्थान पर अन्य भाषा न थोपी जावे।

ऐसा विदित होता है कि वाणासुर भी एक चतुर राजनीतिज्ञ रहा होगा, उसे यह अपना राज्य तो शर्तानुसार छोड़ना पड़ा, परन्तु उस की राक्षसी व पैशाचिक वृतियां आज भी यथावत विद्यमान है।

वाणासुर के प्रस्थान के पश्चात उसकी एक मूर्ति बनाई गई, उसे एक पिंजरे में बन्द करके एक मकान के तहखाने में लटका दिया गया, तथा यह शर्त भी लगा दी गई कि यदि वाणासुर इस गांव में दोबारा आने का प्रयत्न करेगा तो इस मूर्ति को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया जाएगा परिणाम-स्वरूप वाणासुर का शरीर भी नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगा यह आध्यात्मिक बन्धन लगाकर महर्षि ने स्थानीय जनता को उस राक्षस से सदैव के लिए भय व आंतक से हीन कर दिया।

जिस स्थान पर यह पिंजरा रखा गया है स्थानीय जनता उसे "राक्सा रा मौढ़" (राक्षस का मकान) कहते हैं। साल में एक बार "फागली" मेले के आयोजन पर वाणासुर ने नाम से राक्षसी व पैशाचिक वृतियां अपना कर खेलें खेलते हैं। तत्पश्चात बकरे की वलि चढ़ाई जाती है।

शासन व्यवस्था ;-

महर्षि जमदग्नि ऋग वैदिक काल के ऋषि माने जाते हैं। इनके द्वारा स्थापित गणतन्त्रात्मक शासन प्रणाली आज भी इस गांव में यथावत प्रचलित हैं। गणतन्त्र का ऐसा प्राचीनतम रुप शायद विश्व में खोज करके भी नहीं मिलेगा। इस गाँव में, चुनाव आदि का ढांचा भी आधुनिक भारत से मिलता जुलता है, शासन की सुविधा के लिए इस गांव को दो भागों में विभक्त किया गया है। एक भाग का नाम "सौर वेढ़" तथा दूसरे भाग का नाम "धारवेढ़" है। जैसे केन्द्र में लोक सभा तथा राज्य सभा है।

देवता जमलू :-

महर्षि जमदग्नि को स्थानीय जनता "देवता जमलू" कह कर पूजन करते हैं। "जमलू" शब्द जमदग्नि का अपभ्रंश रूप है। इस जनपद की सारी शासन व्यवस्था का संचालन "देऊ जमलू" के आध्यात्मिक आदेश पर चलता है। राजकीय हस्ताक्षेप का यहां तनिक भी प्रभाव नहीं है। राज्य की ओर से भी इन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता व शासन व्यबस्था की पूर्ण छूट दे रखी हैं। शायद इस प्राचीन परम्परा तथा संस्कृति को जीवित रखने का हस्तक्षेप न करने का कारण रहा हो।

मुगल-सम्राट अकबर भी महर्षि के अनुयायी :

जनुश्रुति है कि एक बार किसी साधु महात्मा को "देवता जमलू" के मन्दिर की ओर से "दो टके" (प्राचीन मुद्रा के दो पैसे) दान स्वरुप मिले, विद्वानों का कथन है कि साधु, सांप, शेर एक स्थान पर अधिक देर नहीं ठहरते। यही साधु महात्मा जी भी भ्रमण करते-करते तत्कालीन बादशाह अकबर की राजधानी दिल्ली जा पहुंचे।

बादशाह के सिपाहियों ने इन्हीं महात्मा जी से, वे मन्दिर में मिले 'दो टके' "जजिया टैक्स' के अधीन छीन लिए तथा उन "दो टकों" की बादशाह के खजाने में जमा कर दिया गया शीघ्र ही बादशाह को अपने स्वास्थ्य में अचानक परिवर्तन अनुभव हुआ। स्वास्थ्य लाभ के लिए चिकित्सकों की पक्तियां लग गई। परन्तु कोई लाभ न हुआ लाचार होकर एक प्रसिद्ध ज्योतिषि के शरण में जाने से विदित हुआ कि उत्तरा खण्ड में देव-भूमि कुल्लु की एक सुन्दर सी उपत्यका में मलाणा नाम का एक गांव है। उस गाँव के देवता का नाम "जमलू" है। उस देवते के खजाने के "दो टके" आपके खजाने में जमा हो गये हैं। जब तक यही दो टके वापिस नहीं होंगे, तब तक आपके स्वास्थ्य लाभ होना असम्भव है।

अब समस्या यह हुई कि उन "टकों" को पहचाना कैसे जाएगा। उसी रात बादशाह अकबर को स्वपन हुआ कि आपके खजाने में "दो टके" आपस में दृढ़ता के साथ जुड़ें हुए होंगे वही टके देवता जमलू के हैं। खोजने पर दो टके आपस में जुड़े हुए मिले जो प्रयत्न करने पर भी अलग नहीं होते थे।

बादशाह अकबर ने उन "टकों" के साथ अपनी सोने की मूर्ति भी देवता के सेवार्थ भेंट दी, आज भी वे दो टके व बादशाह की मूर्ति यथावत विद्यमान है।

धन के रुप में भेंटों का अम्बार :-

स्थानीय श्रध्दालुजन सजीव वलि भेंट के अतिरिक्त यहां सोने और चान्दी की पशु मूर्तियां बनाकर देवता जमलू के सेवार्थ अर्पित करते हैं। इसके अतिरिक्त मुद्रा के रूप में भी भेंटें चढ़ाई जाती हैं। यह सब धन देवता के कोष में रखा जाता है। इस कोष में न मालूम किस युग से लेकर भेंट का धन इकट्ठा होता रहा है। कहना कठिन है।

संजीव बलि प्रथा पर अधिक महत्व :-

समयानुसार यहां वाणासुर के नाम से बकरे आदि की वलियां दी जाती हैं। मेले आदि के आयोजन पर वलियों का अधिक प्रबन्ध किया जाता है। विशेषकर "फागली" मेले पर हर साल फाल्गुन मास में वलि भेंट पर अधिक महत्व दिया जाता है। वलि का ढ़ंग भी पैशाचिक

है। बतरे आदि को गले से काटने के अतिरिक्त छुरे से उसके शरीर को चीर कर उसका धड़कता हुआ दिल नीचे पत्थर पर रखकर भेंट किया जाता है।

बलि का यह अनोखा ढंग प्राचीन काल की अन्य जातियों में भी प्रचलित था। सम्भवतः तत्कालीन समय में राक्षसी व पैशाचिक वृति की जातियां अधिक फैली हुई हों।

अनोखी भाषा संस्कृति एवं सभ्यता :

स्थानीय जनपद की भाषा का नाम "कणाश" है। इनकी बोली संसार की किसी भी भाषा व बोली से मेल नहीं खाती, केवल दो चार शब्द ही लाहुल व स्पीती की बोली से मिलते हैं। जन श्रुत्यानुसार इनकी भाषा राक्षसी में इस बोली को आँशिक रूप से समझ तो सकते हैं, पर बोलना कठिन है।

यहां की सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक गति विधियां कुछ अद्भुत सी प्रतीत होती हैं। आर्य सभ्यता का यहां विशेषप्रभाव नहीं है महर्षि जमदग्नि तो आर्य साभ्यता आदि मानव रहे हैं। फिर भी स्थानीय प्रवासी आर्य सभ्यतासे अप्रभावित ही हैं।

प्राचीन भारत की आदिवासी जातियों, भीलों, किरातों गोंडों आदि लोगो के सम्बन्ध में अध्ययन करने से तत्कालीन इतिहास की बहुत सी बातें सामने आती हैं। उन आदिवासी लोगों की आकृति व प्रकृति, अन्य आर्य लोगों से बहुत सी बातों में भिन्नता पाई दिखाई देती हैं। उन के विश्वास, श्रद्धा, रहन-सहन, रीति-रिवाज तथा भाषा में आज भी भिन्नता पाई जाती है। यह ठीक है कि ऐसी सांस्कृतिक तथा भाषा की मौलिकता सभी प्रकार की जातिओं में समान रूप से पाई जाती है। परन्तु इस के अतिरिक्त अनेक बातों की प्रतिकूलता भी पाई जाती है।

वापसी :

दो दिन तक महर्षि आश्रम में रहने के पश्चात् हम सब सहयात्री एक अन्य मार्ग से, जो "चन्द्रखणी" पर्वत से होकर गुजरता है। वापिस आए, इस पर्वत का मनोरम दृश्य बड़ा ही मनोमुग्धकारी है। रंग-बिरंगे फूल, भान्त-भान्त के पक्षी तथा पग-पग पर ठण्डे पानी के जल स्रोत जड़ी बूटियों से भरपूर मीलों तक फैले हरितिमा लिए घास के पर्वत, यहां पहुंचने पर किसी भी भावुक मानव का दिल ऐसा प्रफुल्लित होता है। जिसका वर्णन गूंगे के गुड के समान है।

गांव व डाकघर बबेली
जिला कुल्लु (हि० प्र०)

पंजाब विश्वविद्यालय की पी० एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध
(सन् 1974)

विषय :— "जायसी (पद्‌मावत) पूर्व रचित हिन्दी प्रेमाख्यानों के आधार पर हिन्दी-प्रेमाख्यान परम्परा के उद्‌गम स्रोत, स्वरुप एवं प्रवृतियों का विवेचन"।

डा० सुशील कुमार फुल्ल
प्राध्यापक कृषि विश्वविद्यालय
पालमपुर (हि० प्र०)

संक्षिप्त रूपरेखा

प्रथम खण्ड :

प्रेमाख्यान : स्वरुप विवेचन

१. प्रेम अर्थ एवं परिभाषा २. आख्यान व्युत्पति एवं अर्थ ३. प्रेमाख्यान एवं कथा, रोमांस, मसनवी आदि ४. कथा, मसनवी एवं रोमांस : निष्कर्ष

द्वितीय खण्ड :

विश्व-साहित्य में प्रेमाख्यान परम्परा का उद्‌भव एवं विकास।

१. विश्व प्रेमाख्यान परम्परा का आदि-स्रोत यूनान अथवा भारत।
२. पाश्चात्य प्रेमाख्यान परम्परा का विकास :
(क) ग्रीक प्रेमाख्यान (ख) लैटिन प्रेमाख्यान (ग) इतालवी प्रेमाख्यान (घ) अंग्रेजी प्रेमाख्यान (ङ) फ्रेंच प्रेमाख्यान (च) अंग्रेजी प्रेमाख्यान।
३. पाश्चात्य प्रेमाख्यान की प्रवृतियां।
४. भारतीय प्रेमाख्यानों की प्रवृतियों से तुलना।
५. मध्य-पूर्व (अरबी फारसी) की प्रेमख्यान परम्परा।
६. मध्य पूर्व एव हिन्दी प्रेमाख्यानों की तुलना।
७. भारतीय प्रेमाख्यान परम्परा का विकास-क्रम : संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश साहित्य का विकास।

तृतीय खण्ड :

जायसी-पूर्व रचित हिन्दी प्रेमाख्यानों का विशेष अध्ययन

१. जायसी-पूर्व रचित हिन्दी प्रेमाख्यानों का सामान्य परिचय :-
(क) हंसावलि (असाइत) (ख) चांदायन (दाऊद) (ग) लखमसेन पद्मावती कथा (दामों) (घ) सत्यवती कथा (ईश्वर दास) (ङ) मृगावती (कुतुबन) (च) माधवानल कामकंदला प्रबन्ध (गणपति)

२. जामसी पूर्व रचित हिन्दी प्रेमाख्यानों के उद्गम स्रोतों का विवेचन ।
३. जायसी पूर्व रचित हिन्दी प्रेमाख्यानों पर अरबी, फारसी के प्रेमाख्यानों का प्रभाव ।
४. जायसी पूर्व रचित हिन्दी प्रेमाख्यानों पर भारतीय प्रेमाख्यानों का प्रभाव ।
५. जायसी पूर्व रचित हिन्दी प्रेमाख्यानों की वस्तुगत एवं शिल्पगत प्रवृतियां ।

हिन्दी प्रेमाख्यान-परम्परा के उद्गम-स्रोत : नये तथ्य

हिन्दी में प्रेमाख्यानों की सुदीर्घ एवं सुविकसित परम्परा मिलती है जो चोदवहीं शताब्दी से बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक प्रवहमान रही । हिन्दी के अधिकतर विद्वानों ने हिन्दी में प्रेमाख्यास-परम्परा के उद्भव एवं विकास का मुख्य कारण फारसी मसनवियों का अनुकरण मात्र माना है । इस मत की स्थापना करने वाले आचार्य रामचन्द्र शुक्ल थे ।[1] परवर्ती अनुसन्धान-कर्त्ताओं एवं आलोचकों ने प्रायः उन्हीं के मत का समर्थन किया है ।[2] डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त प्रथम विद्वान् हैं, जिन्होंने 'हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' की भूमिका में पूर्व प्रचलित मतों का स्पष्ट शब्दों में खण्डन करते हुए यह मत स्थापित किया कि "प्रेमाख्यान परम्परा या रोमांसिक कथा-काव्य-परम्परा...............शुद्ध भारतीय स्रोतों पर आधारित है, इसे फारसी मसननवियों से सम्बद्ध मानना एक भ्रांति है । भारतीय प्रेम-कथाओं की यह परम्परा सिकन्दर के साथ यूनान में पहुंच कर सारे यूरोप में फैल गई थी, जिसे बाद में रोमांस-काव्य का नाम दिया गया है ।"[3] प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक ने अपने शोध-प्रबन्ध में हिन्दी-प्रेमाख्यान-परम्परा के उद्गम-स्रोतों के विवेचन का प्रयास करते हुए अनेक नये निष्कर्ष प्राप्त किये है ।[4]

विश्व-साहित्य में सुनिश्चित प्रेमाख्यान-परम्परा मिलती है । हिन्दी के विद्वानों के प्रेमाख्यानों सम्बन्धी निष्कर्ष मूलतः इसलिए भी त्रुटिपूर्ण रहे क्योंकि उन्होंने इस परम्परा को विश्व-प्रेमाख्यान के साहित्य की पृष्ठभूमि में न परख कर, मध्यपूर्व की मसनवियों का ही हिन्दी रूपान्तर अथवा हिन्दी संस्करण मानने का आग्रह किया, जो अप्रामाणित एवं तथ्यों के विपरीत है ।[5] दूसरे अधिकांश अनुसन्धानकर्ताओं ने जायसी एवं उनके परवर्ती प्रेमाख्यानकारों का ही विशेष अध्ययन एवं विश्लेषण प्रस्तुत किया, जबकि किसी परम्परा के सही मूल्यांकन के लिए आरम्भिक परिस्थितियों एवं कृतियों के विश्लेषण का विशेष महत्व होता है ।

विश्व-साहित्य में कथा के उद्भव एवं विकास में भारत का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । अनेक स्वदेशी एवं विदेशी विद्वानों ने इस बात को मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है कि नीति-कथा का उद्भव-स्थल भारत है तथा वहीं से ये कथाएं यूनान पहुंची और वहां से फिर विश्वसाहित्व में । वास्तव में नीति-कथाओं के क्षेत्र में ही नहीं काम-कथाओं के क्षेत्र में भी भारत अग्रणी रहा है । भारतीय काम-कथाओं की विश्व-यात्रा भी बहुत पहले सम्पन्न हो चुकी थी, इसके स्पष्ट प्रमाण

मिलते हैं। हेरोदोतस एवं हिकेतियस (पांचवीं शती ईसा पूर्व) आदि ग्रीक-लेखकों की रचनाओं में ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं। जिनसे पता चलता है कि अनेक भारतीय काम-कथाएं पश्चिमी ऐशिया एवं आमोनिया के मिलेटस नगर से होकर यूनान पहुंच चुकी थी तथा वहीं से वे धीरे-धीरे पाश्चात्य-जगत् में पहुंचती रही। ये काम कथाएं ही कालान्तर में अपने किंचित् परिष्कृत एंव परिवर्द्धित रुप में विश्व प्रेमाख्यानक-परम्परा के रुप में विकसित हो गई।[6] 'सिद्धतापस नाम की भारतीय प्रेमाख्यानक-रचना का अनुवाद प्रथम शती ईसा पूर्व में यूनानी भाषा में मिलता है।[7] सिद्धतापस' के अनुवाद फिर कई शताब्दियों तक मध्यपूर्व एवं पश्चिम की भाषाओं में पन्द्रवीं शताब्दी तक होते रहे। इसी प्रकार 'शुकसप्तति' की दो कथाए ज्यों की त्यों इतावली प्रेमाख्यानकार की रचना 'दकैमरान' (१४वीं शती) में मिलती है।[8] इसी प्रकार 'कथासरित्-सागर' (बड्डकहा) की एक प्रेमकथा (उपकोशा तथा उसके प्रेमी) का 'अलिफ लैला व लैला' में मिलना भारतीय कामकथाओं तथा प्रेमाख्यानों के विश्व भर में व्याप्त हो जाने को प्रमाणित करता है।[9] स्पष्ट है कि विश्व की अनेक भाषाओं में जो प्रेमाख्यान लिखे गये हैं, उनमें से कुछ रचानाओं में भारतीय कथावस्तु की विद्यमानता इस क्षेत्र में भारत को अग्रणी सिद्ध करती है। वास्तविकता तो यह है कि प्रेमाख्यानों का आदि स्रोत एवं उद्‌भव-स्थल भारत ही है तथा यहीं से ये रचनाएं समय समम पर सम्पर्क के विभिन्न साधनों द्वारा विश्व-यात्रा पर निकली।[10]

विश्व - प्रेमाख्यान-परम्परा के उद्‌भव-स्थल एवं आदिस्रोत का निर्णय हो जाने पर हिन्दी-प्रेमाख्यानों के उद्‌भव स्रोतो को तीन दृष्टियों से देखना उपयोगी हो सकता है। अर्थात् (क) कथावस्तु के स्रोत (ख) कथानक रुढ़ियां तथा (ग) शिल्प एवं शैली।

(क) कथावस्तु के स्रोत

हिन्दी का प्रथम ज्ञात प्रेमाख्यान 'हंसावली' है, जिसकी रचना असाइत ने सन् १३७० ई० में की[11] इस दृष्टि से 'हंसावली की कथावस्तु के स्रोतों का जानना ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। 'हंसावली' के प्रथम खण्ड की कथा का आधार निश्चित रूप से कुस-जातक ह (जातक है जातक संख्या ५३१)।[12] इसके अतिरिक्त 'हंसावली' की कथाओं का आधार कथा-सरित्सागर' की दो कथाएं हैं अर्थात् (१) नरवाहनदत्त एवं राजकुमारी कर्पूरिका तथा (२) राजा विक्रमादित्य एवं मलयवती की कथा।[13]

हिन्दी के दूसरे प्रेमाख्यान दाऊद रचित 'चान्दायन (सन् १३७९ ई०) की कथा का आधार उत्तरी भारत में व्यापक रूप से प्रचलित 'लोरिकायन' का ही भोजपुरी अथवा अवधी रुप है।[14] हिन्दी के तीसरे प्रेमाख्यान दामो रचित 'लखमसेनपद्मवतीकथा' (सन् १४५६ ई०) का आधार 'कथासरित्सागर' की 'पुत्रक एवं पातली' की कहानी में मिलता है।[15] ईश्वरदास कृत 'सत्यवती-कथा' (सन् १५०१ ई०) की कथावस्तु का आधार 'सन्बुल जातक' सती शाण्डिली की पौराणिक कथा तथा संस्कृत के सत्यवती उपाख्यान' में उपलब्ध है।[16] कुतुबनकृत 'मृगावती' (सन् १५०३ ई०)की कथावस्तु के आधार-स्रोत 'कथासरित्सागर' की कथाओं, विदूषक एवं विद्याधरी' तथा 'निश्चदत्त एवं अनुरागपरा' में सुरक्षित मिलते हैं।[17] मृगावती एवं अनुरागपरा के

कथन-साम्य के कथन-साम्य से दोनों रचनाओं का भाव-साम्य भी सहज ही प्रकट होता है । [18]

अनुरागपरा का कथन

"यदि तुम मेरे नगर तक पहुंच सको, तो मैं निश्चय ही तुम्हारे से विवाह करुंगी । तुम्हारे लिए वहां पहुंचना कठिन नही है । तुम्हें निश्चय ही अपने प्रयत्न में सफलता मिलेगी । प्रयत्नशील व्यक्ति के लिए इस संसार में कुछ भी कठिन नहीं । "[19]

मृगावती का कथन :

ऐ धाय, कुंवर से ऐसी बात कहना--मेरा जीव तुझ पर अनुरक्त है किन्तु जो कोई वस्तु सहज ही प्राप्त हो जाती है, मनुष्य उसका मर्म नहीं जान पाता । इसी कारण से मैं उड़कर जा रही हूं । तुम कुंवर से कहना कि वह मेरे पास दौड़कर आए । कंचन नगर मेरा स्थान है, और मेरे पिता का नाम रुपमुरारी है ।" [20]

कुतुबन ने तो अपनी कथा के भारतीय मूल-स्रोत की ओर संकेत भी किया है । 'मृगावती' की कथा वस्तु किसी कल्पना की उपज नहीं थी अपितु किसी पूर्ववर्ती हिन्दू कथा पर आधृत थी ।[21] इन स्पष्ट तथ्यों के प्रकाश में भी कतिपय विद्वान् 'मृगावती, को विदेशी प्रभाव का उदाहरण मानते हैं । तो यह उनकी त्रुटिग्रस्त शोध-बुद्धि का ही परिचायक लगता है और कुछ नहीं ।

हिन्दी के छटे प्रेमाख्यान गणपतिकृत 'माधवानल कामकन्दला प्रबन्ध' (रचनाकाल सन् १५१८ अथवा सन् १५२७ ई०) का आधार भी संस्कृतक की कोई रचना रही है । इस मत की पुष्टि आलम की पंक्तियों से हो जाती है ।[22]

कछु अपनी कछु परकृति चोरौं
जथा सकति करि अच्छर जोरौं ॥
सकल सिंगार विरह की रीति,
माधो काम कन्दला प्रीति ॥
कथा संस्कृत सुनि कछु थोरी,
भाषा बांधि चौपही जोरी ॥

इसी मत की पुष्टि विरह-वारीश में बोधा के स्पष्ट उल्लेख से भी हो जाती है ।[23] अभिप्रायों की दृष्टि से भी 'माधवानल कामकंदला प्रबन्ध, का आधार संस्कृत-रचना ही सिद्ध होता है । [24] मलिक मुहम्मद जायसी के 'पद्मावत' की कथा का प्रमुख आधार भी प्राकृत का प्रेमाख्यान 'रयणसेहरीकहा' (रत्नशेखरीकथा) ही है ।[25] इसी प्रकार जायसी के परवर्ती प्रेमाख्यानों की कथावस्तु के आधार स्रोत भी (एक आध आपवाद को छोड़ कर, जो परम्परा की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं है) पूर्वती भारतीय-सहित्य में मिलते हैं । इन की कथावस्तु विशुद्ध भारतीय है, विदेशज नहीं ।

निष्कर्षस्वरुप कहा जा सकता है कि अधार-स्रोतों की दृष्टि से हिन्दी के प्रेमाख्यान विसेष कर जातक-कथाओं, कथासरित्सागर, प्राकृत, संस्कृत तथा अपभ्रंश के प्रेमाख्यानों के ऋणी हैं।

(ख) कथानक-रूढ़ियां

हिन्दी के प्रेमाख्यानों में कतिपय सामान्य कथानकरुढियां अथवा कथा-अभिप्राय मिलते हैं। ये इसी प्रकार है -

१. निस्संतान राजा के घर जप-तप' दान-पुण्य अथवा दैवी कृपा के फलस्वरूप नायक का जन्म ।[26]प्रस्तुत कथानक रुढ़ि ईन पूर्वर्ती भारतीय रचनाओं में मिलती हैं--कुस जातक (५३१),[27] चुल्लपलोभन जातक (२६३), [28] कादम्बरी[29], दशकुमारचित [30], कथासरित्सागर [31],प्राकृत-कथासंग्रह [32], भविसयत्तकहा [33], नागकुमारचरित [34], आदि।

२. नायक-नायिका में प्रेमोत्पत्ति प्राय: प्रत्यक्ष-दर्शन, गुणश्रवण, चित्रदर्शन अथवा स्वप्न-दर्शन द्वारा। [35]

प्रस्तुत कथानक-रूढ़ि पूर्वर्ती भारतीय साहित्य में प्रचुरता से मिलती है । जातक-कथाओं, कथासरित्सागर, संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश के प्रेंमाख्यानों में अनेक उदाहरण मिलते हैं[36]

३. नायक प्राय: विप्र, योगी, तपस्वी आदि का वेश धारण कर नायिका की प्राप्ति के लिए निकलता हैं।[37]

यह अभिप्राय भी जातकों, कथासरित्सागर, प्राकृत, अपभ्रंश के प्रेमाख्यानों में मिलता है।[38]

४. नायक-नायिका की प्रथम भेंट प्राय: सरोवर-तट, वाटिका, मन्दिर आदि में ।[39]
कट्ठहारि जातक (सं०) हरिवंश पुराण, शकुन्तलोपाख्यान, कथासरित्सागर, विलासवती-कथा (अपभ्रंश) आदि में उक्त कथानक-रूढ़ि का प्रयोग मिलताहै ।[40]
५. नायिका की प्राप्ति के पूर्व नायक को साहस एव शौर्य का प्रदर्शन करना पड़ता है।

हंसावली, चांदायन, लखमसेनपद्मावती कथा, मृगावती पद्मावत, मधुमालती, चित्रावली आदि प्रेमाख्यानों में यह प्रवृति मिलती है।

महाभारत, हरिवंशपुराण, विष्णुपुराण, मुदुपाणिजातक (संख्या २६२) कथासरित्सागर, वसुदेवहिंडी, भविष्यत्तकहा विलासवती आदि अनेक रचनाओं में यह कथानक-रुढ़ि मिलती है।[41]

६. नायक-नायिका का एक स्थान से उड़ कर दूसरे स्थान पर जाना अथवा अप्सराओं द्वारा ले जाया जाना ।[42]

यह रूढ़ि बहुत पहले महजनक जातक (५३९), चुल्लपलोभन जातक (२६३), हरिवंश पुराण, कथासरित्सागर, 'लीलावई', विलासवती, भविसयत्तकहा आदि में मिलती है।

७. नायिका की प्राप्ति के लिए निकला नायक किसी राक्षस आदि के बन्धन में फंसी किसी युवती को मुक्त करवाता है।[43]

'कथासरित्सागर'[44] की विदूषक की कहनी में तथा 'भविसयत्तकहा' में यह अभिप्राय मिलता है।

८. नायक के रुप के प्रति सौतेली माता अथवा पटरानी का आकर्षित होकर काम-प्रस्ताव करना तथा तिरस्कृत होने पर नायक पर मिथ्या-दोष लगाकर राजा से दण्ड दिलवाने का प्रयत्न करना।[45]

बन्धन मोख जातक (१२०)[46], कथासरित्सागर,[47] विलासवतीकथा, सुदर्शनचरित आदि में उक्त कथानकरुढ़ि का प्रयोग हुआ है।

९. पूर्व-भव अथवा किसी अन्य कारण से नायिका का पुरुष-द्वेषिणी होना।[48]

यही अभिप्राय कुसजातक (सं० ५३१)[49] तथा कथासरित्सागर की 'नरवाहनदत्त एवं राजकुमारी कर्परिका' की कथा में मिलता है।[50]

१०. नायिका द्वारा सत्य परीक्षा। अपने सत् के परीक्षण द्वारा नायिका असम्भव बातों को भी सम्भव कर दिखाती है।[51]

सत्यपरीक्षा का अभिप्राय सम्बुल जातक (संख्या ५१९)[52], सती सावित्री, लोपामुद्रा आदि की पौराणिक कथाओं में मिलता है। सती शाण्डिली में भी इसका प्रयोग हुआ है।[53]

इनके अतिरिक्त भी कतिपय अन्य अभिप्रायों का प्रयोग हिन्दी प्रेमाख्यानों में हुआ है। वे सब भी पूर्ववर्ती भारतीय रचनाओं में मिलते हैं।[54] कथानक-रुढ़ियों के उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी के प्रेमाख्यानों में प्रयुक्त कथा-अभिप्राय जातक कथाओं, कथासरित्सागर, महाभारत, हरिवंश पुराण, विष्णु पुराण तथा संस्कृत-प्राकृत एवं अपभ्रंश के प्रेमाख्यानों में अर्थात् पूर्ववर्ती भारतीय साहित्य में व्यवहृत हुए हैं। अतः यह निस्संकोच कहा जा सकता हैं कि कथानक-रुढ़ियों की दृष्टि से भी भारतीय प्रेमाख्यान पूर्ववर्ती भारतीय रचनाओं के ऋणी हैं, न कि विदेशज-अभिप्रायों के मुखापेक्षी।

(ग) शिल्प एवं शैली

शिल्प के अन्तर्गत इन बातों को लिया जा सकता है--(१) प्रेमाख्यानों का प्रस्तावनात्मक अंश (२) रचना-अन्त सम्बन्धी काव्यगत-रुढ़ियां तथा (३) प्रेमाख्यानों का खण्डों आदि में विभाजन।

(१) प्रेमाख्यानों काप्रस्तावनात्मक अंश

हिन्दी के प्रेमाख्यानों मे प्रस्तावनात्मक अंश रहता है, जिसके अन्तर्गत प्रायः परमात्मा की स्तुति, देवी-देवता का स्मरण, समकालीन शासन की प्रशंसा, रचना के प्रेरणास्रोत एवं उद्देश्य, रचना-काल आदि का उल्लेख रहता है। कभी-कभी कवि-परिचय, आत्म-विनय, सज्जन-दुर्जन स्मरण भी रहता है। किन्हीं प्रेमाख्यानों में मुहम्मद की वन्दना, उनके चार मीतों का वर्णन, गुरु-प्रशंसा भी मिलती है।

हिन्दी के अधिकांश शोध-कर्त्ताओं ने हिन्दी प्रेमाख्यानों के प्रस्तावनात्मकअंश को फारसी-मसनवियों के आकरण पर अपनाया गया माना है, परन्तु उनका ध्यान इन पूर्ववर्ती भारतीय साहित्यकी रचनाओं के प्रस्तावनात्मकअंशों की ओर गया नहीं जान पड़ता, अन्यथा वे इतनी बड़ी भूल न करते। ये रचनाएं तथा इनके प्रस्तावनात्मक अंश ध्यातव्य हैं—बाण भट्ट की कादम्बरी, दण्डी का दशकुमार चरित, प्राकृत की लीलावई, करकंड चरित आदि प्रेमाख्यान।

अत: प्रस्तावनात्मकअंश को विदेशी प्रभाव मानना अनुचित है।

(२) रचना-अन्त सम्बन्धी काव्यगत रुढ़ियां

रचनाओं के अन्त में प्रायः रचना-काल, कथा-माहात्म्य, रचयिता का नामोल्लेख, ईश-स्मरण आदि का उल्लेख रहता है।
कभी-कभी कवि-परिचय भी रहता है।

पूर्ववर्ती-स्रोत :

ये सभी काव्यगत रुढियां पूर्ववर्ती भारतीय रचनाओं में उपलब्ध होती है। 'कथा-सरित्सागर' के अन्त में रचना-स्रोत, कथा-उद्देश्य, कथा-माहात्म्य आदि का उल्लेख हैं।[55] लीलावई (प्राकृत-प्रेमाख्यान) के अन्त में भी कवि-सामर्थ्य, सज्जन-प्रसंग, रचना के पदों की संख्या, कथा-माहत्म्य आदि का उल्लेख है।[56] इसी प्रकार 'कुवलयमाला कथा', नागकुमारचरित, सुदर्शनचरित, करकंडुचरित आदि में हिन्दी-प्रेमाख्यानों के अनुरुप ही रचनाअन्त मिलता है।

(३) प्रेमाख्यानों का खण्डों आदि में विभाजन

हिन्दी के प्रेमाख्यान प्रायः खण्डों में विभाजित होते हैं तथा प्रत्येक खण्ड का शीर्षक रहता है। हंसावली, चाँदायन, मृगावती, पद्मावत, मधुमालती, चित्रावली आदि अधिकांश प्रेमाख्यानों में यही प्रवृति मिलती है। हिन्दीआलोचकों का यह मत रहा है कि खण्ड-विभाजन की परिपाटी भी फारसी मसनवियों की, सुखियों के अनुकरण पर हुई है, परन्तु यह मत भी तथ्यों की अवहेलना करता जान पड़ता है।

वास्तविकता तो यह है कि हिन्दी में प्रेमाख्मानों की खण्ड-विभाजन की परिपाटी के प्रेरणा-स्रोत अपभ्रंश के प्रेमाख्यान रहे हैं। अपभ्रंश के महाकाव्य एवं प्रेमाख्यान दोनों प्रायः सन्धियों में विभाजित मिलते हैं। कहीं-कही महाकाव्यों का विभाजन कांडों में भी हुआ है। प्रत्येक कांड

में कतिपय सन्धियां रहती हैं । प्रत्येक सन्धि में कड़वक रहते हैं । एक रचना में कितनी संधियां हों, यह निश्चित् नहीं । उल्लेखनीय है कि अपभ्रंश–रचनाओं में प्रत्येक सन्धि का शीर्षक प्रमुख घटनाओं के आधार पर दिया रहता है । पुष्पदन्त की रचना 'नागकुमारचरित' (९६६-९६८ई० के बीच रची गयी) की प्रत्येक सन्धि पर शीर्षक दिये गये मिलते हैं ।[57] अतः हिन्दी प्रेमाख्यानों की खण्ड–विभाजन परिपाटी अपभ्रंश से आई है न कि फारसी से

शैली

हिन्दी प्रेमाख्यानों की काव्य–पद्धति 'दोहा–चौपाई' की है । चौपाई में किननी अर्द्धालियां हों, यह निश्चित नहीं । प्रायः पांच, सात,यो अर्द्धालियां पर दोहा रखने का क्रम मिलता है । जायसी के पद्मावत में सात अर्द्धालियों पर दोहे का क्रम है । मधुमालती, इन्द्रवती में पांच-पांच पंक्तियों पर एक-एक दोहे का क्रम है ।

दोहे-चौपाई का उद्गम स्रोत

अपभ्रश का 'दुबई' छन्द ही हिन्दी में आकर 'दोहा' हो गया । डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त के शब्दों में जैन कवि पुष्पदन्त ने अपनी कृष्णलीला में दो पंक्तियों वाले छन्द विशेष के लिए 'दुबई' नाम का प्रयोग किया है, जिसे राहुल जी ने द्विपदी का तद्भव माना है । 'द्विपदी' से 'दुबई' की भांति ही, 'द्विपद' से 'दुबअ' की व्युत्पति मानी जा सकती है । दुबअ से क्रमश। दुआ, दुवा, दुहा व दोहा का विकास हुआ ।[58] डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपभ्रंश के अलिल्लह को चौपाई का सामान्तर माना है ।[59] अतः दोहा-चौपाई की पद्वति विशुद्ध अपभ्रंश की देन है । फारसी की मसनवी-पद्धति से इसका दूर का सम्बन्ध भी नहीं है ।

निष्कर्ष

ऊपर विश्व-प्रेमाख्यान-परम्परा की व्यापक पृष्ठभूमि को आधार मानते हुए हिन्दी प्रेमाख्यान-परम्परा के आदि-स्रोत एवं इसके उद्गम–स्रोतों पर संक्षेप में विचार किया गया है । उपर्युक्त विवेचन से कतिपय बहुत ही महत्त्वपूर्ण एवं स्पष्ट निष्कर्ष मिलते हैं, जो परम्परागत प्रेमाख्यानक आलोचना के लिए एक चुनौती हैं । उद्गम-स्रोत-सम्बन्धी कतिपय उपलब्धियां नीचे दी जाती हैं :-

१. विश्व-साहित्य में प्रेमाख्यानों की सुनिश्चित एवं सुदीर्घ परम्परा मिलती है तथा इस बात के स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं कि कतिपय भारतीय कथांश पाश्चात्य प्रेमाख्यानो में प्रयुक्त हुए हैं ।
२. विश्व की प्रेमाख्यान-परम्परा का आदि-स्रोत भारत है ।
३. भारतीय काम–कथाएं ही कालान्तर में अपने किंचित् परिवर्तित एवं परिवर्द्धित रुप में प्रेमाख्यानों के रुप में प्रस्फुटित हुई ।
४. हिन्दी के प्रेमाख्यान कथावस्तु की दृष्टि में पूर्ववर्ती भारतीय रचनाओं के ऋणी हैं । इनमें विदेशज सामग्री का प्रयोग नहीं हुआ है ।

५. हिन्दी प्रेमाख्यानों में प्रयुक्त कथानक-रुढ़ियां सभी की सभी अकेले जातक-कथाओं एवं कथासरित्सागर में ही मिल जाती है।

६. हिन्दी के प्रेमाख्यानों के शिल्प-प्रस्तावनात्मकअंश, खण्ड-विभाजन, रचना-अन्त आदि के स्रोत अपभ्रंश के प्रेमाख्यान हैं।

७. दोहा-चौपाही-पद्धति का स्रोत अपभ्रंश के छन्द हैं, फारसी मसनवी नहीं।

८. हिन्दी-प्रेमाख्यानों के अधार-स्रोत की दृष्टि से ये ग्रन्थ बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं-जातक कथाएं (छह खण्ड), महाभारत, कथासरित्सागर, शुकसप्तति, विष्णु-पुराण, हरिवंश पुराण, प्राकृत संस्कृत एवं अपभ्रंश के कतिपय प्रेमाख्यान।

९. हिन्दी-प्रेमाख्यानों ने उन्हीं अंशों अथवा कहानियों को लिया है जिन में प्रेम की अतिशयता के चित्रण की संभावना थी। अतः इन प्रेमाख्यानों में किसी धर्ममतवाद का नहीं, अपितु भोगवाद का चित्रण हुआ है।

हिन्दी प्रेमाख्यान-परम्परा के उद्गम-स्रोत : नये तथ्य की पाद टिप्पणियाँ

१. रामचन्द्र शुक्ल, जायसी ग्रन्थावली (सं० २०२५), भूमिका पृष्ठ ४।

२. (क) गुरुदेवप्रसाद वर्मा, हिन्दी के मुसलमान कवियों का प्रेम-काव्य (१९५७), पृष्ठ १४।
(ख) डॉ० शिवसहाय पाठक, मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य (१९६४), पृष्ठ ४४४।
(ग) परशुराम चतुर्वेदी, मध्यकालीन प्रेम-साधना (१९६२) पृष्ठ २३५)।
(घ) डॉ० श्याम मनोहर पाण्डेय, मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, पृष्ठ १३६।
(ड.) डॉ० नित्यानन्द तिवारी, मध्ययुगीन रोमांचक आख्यान (१९७०), पृष्ठ २६८ तथा आगे

३. डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (१९६५), प्राक्कथन, पृष्ठ ९।

४. "पद्मावत (जायसी) पूर्व रचित हिन्दी प्रेमाख्यानों के आधार पर हिन्दी प्रेमाख्यानों के उद्गम-स्रोत, स्वरुप एवं प्रवृत्तियों का विवेचन"—
(पंजाब विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृति शोध-प्रबन्ध, मार्च १९७४)

५. "मध्यपूर्व एव हिन्दी प्रेमाख्यान" सप्तसिंधु, जनवरी १९७५, वर्ष २२, अंक १, पृष्ठ ४९-६०

6 Sushil Kamar Phull, India : Home of Erotic Sales, The Illusfrated Weekly of India Vol. xcvli, 45, 7 13, 1976, P. 39.

७. डॉ० सुशील कुमार फुल्ल, सिद्धतापस की विश्व-यात्रा, कादम्बिनी, अक्तूबर १९७५, वर्ष १५, अंक १२, पृष्ठ ३०-३५।

८. डॉ० सुशीलकुमार फुल्ल, बोकेशियो शुकसप्तति की कथाओं से परिचित था, कादम्बिनी, फरवरी १९७५, वर्ष १५, अंक ४, पृष्ठ ११९-१२२।

९. डॉ० सुशीलकुमार फुल्ल, अरबी में बड्डकहा, स्रोतस्विनी त्रैमासिक, मार्च १९८६, वर्ष १ अंक ३, पृष्ठ २४-२६।

१०. डॉ० सुशीलकुमार फुल्ल, विश्व-प्रेमाख्यान : परम्परा व स्रोत, राजस्थान भारती, भाग १४, जनवरी-मार्च १९७५ अंक १, पृ० २-१८।

११. डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (१९६५), पृष्ठ ५४५।

१२. भदन्त आनन्द कौसल्यायन, जातक, पंचम खण्ड संवत् (२०११), पृष्ठ ३६०-३९४।

१३. डॉ० सुशीलकुमार फुल्ल, हिन्दी के प्रथम प्रेमाख्यान : हंसावली के आधार-स्रोत, सम्मेलन पत्रिका, भाग ६१, संख्या १, शक १८९६, पृष्ठ ८५-९१।

१४. "पद्मावत (जायसी) पूर्व रचित हिन्दी प्रेमाख्यानों के आधार पर हिन्दी प्रेमाख्यान-परम्परा के उद्गम-स्रोत, स्वरूप एवं प्रवृतियों का विवेचन' (शोध प्रबन्ध) पृष्ठ २७१ ।

१५. डॉ० सुशीलकुमार फुल्ल, 'लखमसेन पद्मावती कथा के आधार-स्रोत,' भारतीय साहित्य, जनवरी तथा अप्रैल १९७३, वर्ष १८, अंक १-२, पृष्ठ ३३-३८।

१६. 'पद्मावत (जायसी) पूर्व..............', शोध प्रबन्ध (१९७४), पृष्ठ २८२ ।

१७. डॉ० सुशीलकुमार फुल्ल, 'मृगावती के स्रोत' परिशोध, जनवरी १९७५- २१-२२ संयक्त अंक, पृष्ठ २०-२३।

१८. वही, पृष्ठ २२ ।

१९. वही।

२०. संपादक, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, मृगावती (१९६८) पृ० ७७।

२१. पहिले हिन्दुई कथ्या अही ।
पुनि रे काहु तुरकी ले कही ॥
पुनि हम खोल अर्थ सब कहा ।
जोग सिंगार बीर रस कहा ॥ वही पृ० ३६८

२२. सम्पादक, श्री गणेश प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी प्रेमगाथा काव्य-संग्रह (१९५३), पृ० १८५

२३. सुन सुभान अब कथा सुहाई, कालिदास बहु रचि सह गाई ॥
सिंहासन बत्तीसी माहीं । पुरिन कहीं तृप पाहीं ॥
पिंगल कह बेताल सुनाई । बोधा खेतहि सह गाई ॥
रुचिर कथा सुन हे दिल माहिर, इश्क हकीकी है जग ज़ाहि ॥
—भारतीय प्रेमाख्यान काव्य (१९६१), पृ० २२० पर उधृत ।

२४. सप्तसिन्धु, वर्ष २२ अंक ७ जुलाई १९७५, 'गणपतिकृत माधवानल कामकन्दलाप्रबन्ध के आधार स्रोत', डॉ० सुशीलकुमार फुल्ल, पृ० ३६ ।

२५. डॉ० जगदीशचन्द्र जैन, प्राकृत साहित्य का इतिहास (१९६१), पृ० ४८५।

२६. सत्यवतीकथा, मृगावती, मधुमालती, चित्रावली, कथा पुहुपवरिषा, ज्ञान-दीप, पुहुपावती, हंसजवाहिर आदि प्रेमाख्यानों में यह रुढ़ि प्रयुक्त हुई है ।

२७. जातक, पंचम खण्ड (सं० २०११) पृ० ३६३

२८. जातक चतुर्थ खण्ड (सं० २००८), पृ० ५२३

२९. कादम्बरी (१९६४), पृ० १३७

३०. हिन्दी-अनुवाद, रांगेय राघव, दशकुमारचरित (१९६८), पृ० २२

३१. कथासरित्सागर, १९६८, प्रथमखण्ड, पृ० १४५

३२. प्राकृत साहित्य का इतिहास (१९६१), पृ० ४७२

३३. भविसयत्तकहा तथा अपभ्रंश कथा-काव्य (१९७०), पृ० ८८

३४. डॉ० नामवर सिंह, हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग (१९६१), पृ० २०७

३५. हंसावली, लखमसेनपदमावतीकथा, सत्यवती, मृगावती, माधवानल-कामकन्दला, पद्मावत, नलदमन, इन्द्रावती आदि अनेक प्रेमाख्यानों में इन में से किसी न किसी रुप में ।

३६. विस्तार के लिए देखिये—'पद्मावत' (जायसी) पूर्व रचित...' (शोध प्रबन्ध), १९७४, पृ० ३०४-३०७

३७. हंसावली, लखमसेनपद्मावतीकथा, पद्मावत, इन्द्रावती आदि में ।

३८. (1) जातक, 'पंचम खण्ड' सं० २०११. पृ० ३६०-९४
(2) The Katha Sarit Sagar (1968); Vol. II.—P, 239

३९. लखमसेमपद्मावतीकथा, सत्यवती कथा, चांदायन, पद्मावत, पुहुपावती आदि ।

४०. 'पद्मावत' (जायसी) पूर्व ··· (शोध प्रबन्ध), पृ० ३०८

४१. विस्तार के लिए देखिये—'पद्मावत (जायसी) पूर्व रचित ·· (शोध प्रबन्ध, पृ० ३१०

४१. मृगावती, मधुमालती, चित्रावली, ज्ञानदीप, हंसजवाहिर आदि में ।

४३. मृगावती, मधुमालती आदि में ।

४४. The Katha Sarit Sagar (1968); Vol. I , P. 138

४५. हंसावली, माधवानलकामकन्दलाप्रबन्ध आदि में ।

४६. जातक, द्वितीय खण्ड (संवत् २०१४), पृ० ६५-६९

४७. The Katha Sarit Sagar (1968); Vol. I, P. 158

४८. हंसावली, लखमसेनपद्मावतीकथा, आदि में ।

४९. जातक, पंचम खण्ड (संवत् २०११), पृ० ३६०-६४

५०. The Katha Sarit Sagar (1968); Vol. II. P. 587-98

५१. ईश्वरदासकृत 'सत्यवतीकथा' में इस का प्रयोग हुआ है ।

५२. जातक, पंचम खण्ड (सं० २०११) पृष्ठ १८२

५३. कल्याण, नारी अंक, वर्ष २२, संख्या १ जनवरी १९४८ पृष्ठ ३८२-८३

५४. विस्तार के लिए देखिये—'पद्मावत (जायसी) पूर्व....' (शोध-प्रबन्ध), पृ० ३१५-१६

५५. The Katha Sarit Sagar (1968) Vol. II, P. 625

५६. लीलावई (१९६६), पृष्ठ १९७-९८ ।

५७. डॉ० राजनारायण पाण्डेय, महाकवि पुष्पदन्त, (१९६८), पृष्ठ ९९ ।

५८. डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त, साहित्यिक निबन्ध (सन् १९६३), पृष्ठ ५४९ ।

५९. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका (१९५४), ५९ ।

पुस्तक समीक्षा

कृष्ण चन्द्र शर्मा

पहाड़ी रचना-सार

हिमाचल प्रदेश की रचनाधर्मी मनीषा पिछले दो दशकों से अपनी अन्तर्निहित महिमा-गरिमा को स्थूल रुप देने में निरन्तर प्रयास-रत रही है। परिणाम सामने है। इस काल-खण्ड में पहाडी में साहित्य सृजन प्रभूत मात्रा में हुआ है। इसमें कुछ साहित्य स्वतन्त्र पुस्तकों के रुप में उपलब्ध है और कुछ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में यत्र-तत्र कीण-विकीर्ण है। इस साहित्य के कुछ नमूनों से भी साक्षात्कार करने के इच्छुक अध्येता को एक महान और विस्तृत कान्तार का अवगाहन करना पड़ता था। इस दृष्टि से यह जानना जरुरी था कि पहाड़ी के मूर्धन्य साहित्य-स्रष्टाओं की प्रतिनिधि रचनाओं को एकत्र संगृहीत करके प्रकाशित किया जाए। पहाड़ी साहित्य-जगत् में इस अभाव की पूर्ति हुई है। हिमाचल प्रदेश कला-संस्कृति-भाषा अकादमी के सदस्य ;- प्रकाशित संकलन "पहाड़ी रचना सार" के प्राकट्य से।

पं० शिवकुमार उपमन्यु द्वारा सम्पादित दो सौ पृष्ठ के इस ग्रन्थ में ३५ रचयिताओं की इतनी ही रचनाएं शामिल हैं। सग्रह का फलक विशाल भी है, विविध भी। इसमें कविता विपाशा का कलरव भी है और वयोवृद्ध चैंटवुड के भरपूर जोबन वाले खच्चर की टाप के साथ अग्रसर होती यात्राओं के संस्मरण भी। इसमें मानव-जीवन की एक रोचक झांकी को कील कर रख देने वाली कहानियां और एकांकी भी है। इसमें शामिल छः एकांकियों में काहन सिंह की कमल के जमाल-व-कमाल की जीवन्त निर्देशन के रुप में '**तरक्की**' और चन्द्रशेखर बेबस का एकांकी **'कबोत'** विशेष दर्शनीय हैं। अश्वनीकुमार गर्ग और चन्द्रमणि वशिष्ठ के एकांकी भी अच्छे बन पड़े हैं। इस संग्रह में किशोरीलाल वैद्य, खुशीराम, गौतम कथित, नारायणचन्द पराशर भीमदत्त काले, बलदेव ठाकुर, हरिराम जस्टा की सात कहानियां शामिल हैं। इनमें **'झासरे'**, '**छणको**' तथा '**म्हारे पट्टू म्हारा देस**' विशेष पठनीय हैं। यात्रा संस्मरण दोनों ही अच्छे हैं। रमेश जसरोटिया ने रोचक शब्दों में '**चम्बे का पांगी तांई**' यात्रा-संस्मरण लिखा है। तुलसी-रमण के संस्मरण "**भूण्डो देखो शोली से**" में शोली के भूण्डे का विवरण तो है ही, प्रसंगवश शिलारु के आलुओं और कोटगढ़ के सेबों का भी जिक्र है। बीच-बीच में हास्य-प्रसंग भी हैं ही, जैसे 'चीटै काटै दो बालौ ओ पैंटो-जै किये आली अंग्रेजणी देखदे सीड़ लागे। ज्यादै एहरे थै जिन्हें अंग्रेंज देखै ही न थैं'। प्रसिद्ध विदेशी लेखिका पिनैलपी चैट वुड जो साथ थीं। ....यह संकलन अनिल राकेशी, नरेन्द्र, अरुण, भगतराम मुसाफिर, सागर पालमपुरी, प्रार्थी,

ललित आदि की ग्यारह कविताओं का मनोहर पुरुष-स्तवक प्रस्तुत करता है। देखिए, खेमराज गुप्त सागर की चम्बयाली में लिखित कविता **'बिन्दी'** दर्शन के सोपान पर चढ़कर हमारी बौद्धिकता को कैसे चमत्कृत करती हैं ?

बिन्दी नुकता-दां बी बणादी, बिन्दी नुकता-चीं बी बणांदी
बिन्दी चिन्ता का जो हट्टे, बिन्दी चिन्ता, चिता बणाए
बिन्दी सौ सौ रुप सजाए, बिन्दी सौ सौ खेल रचाए
बिन्दी आ जो ओं बणादी, बिन्दी अहं, ब्रह्म समझान्दी
बिन्दी गंगा री सरताज, बिन्दी कुण्डलियां खुलवाए
बिन्दी सौ सौ योग रचाए, बिन्दी सौ सौ रोग दसाइ

'चाचू गिरभारी' के लोक-प्रिय गायक देसराज डोगरा की **'अणबुझ' त्रिहा'** अर्थात् **'अतृप्त तृषा'** में अवसाद के दमघोटू वातावरण का संकेत देखिए -

मैं छांबे लगाए न इक इक मरोएं
त्रिहा एह मेरी कदी भी न बुज्ही
कल्पदे कल्पदे गई उमर बीती
जिजो तोपदा था कदी भी न सुज्झी

धौलाधार के चतुर चितेरे-पीयूष तथा हिमाचल के प्रतिष्ठिता संस्कृत कवि भवानीदास की कविताएं भी पठनीयता-स्वदनीयता के लिए खुला आमन्त्रण दे रही है। निबन्धों में भी वैविध्य है। केशवशर्मा का **'कालिदासौ रै नारी पात्र'** आलोचनात्मक है, जबकि मनसाराम की लेखनी से प्रसूत निबन्ध **'महारिखी जागबलक'** का उपजीव्य वेदकालीन महर्षि याज्ञवल्क है। नीलमणि उपाध्याय की रचना **'मण्डी नगरा री कहाणी'** तथा बंशीराम के लेख का मुख्य परिप्रेक्ष्य ऐतिहासिक है, जबकि डॉ० ओहरी का निबन्ध शोध-परक है। अन्य निबन्ध मुख्यत: ललित निबन्धों की श्रेणी में आते हैं। वे हैं आत्माराम, मोलूराम, गोवर्धनसिंह तथा वेद अग्नि के निबन्ध **'खिन्द खन्दोलू'** की गुदगुदी-जनक भाव-भंगिमा निबन्धकार आत्माराम के समूचे व्यक्तित्व तथा कर्त्तव्य की सहसा याद दिला देती है। हास्य का उद्‌द्राय लास्य देखिए **'खिन्द खन्दोलू'** के नीचे उद्‌धृत शब्दों में -

"धमागा दे कम्मा जो बी खिद-खंदोंलू बड़ी लाग रखदे, ख्याल औंदा के शेक्सपीयरैं खंदोलूए दी बुक्कुल लगाई नै ई डरामा कने कविता लिखी होंगी। 'बोलदे नां लाल गुदड़ी च पलदे'। ये गुदड़ खिद-खंदोलू च ई होंदे होर कुती ? तां असें इयां बी गलाई सकदे के लाल खिदां च पलदे। मंजे गास खिदा च पलटोई नैं जे सोचे तां मतियां गल्लां सुझदियां, सोचणे दा मूड बणी जान्दा। कदी कदी मौंगण लोकां जो तंग करदे। कदी बखिया जाई नै चींडू दिंदे, कदी पिछलिए गास मुच्च मारदे। तिन्हां जो न मरदा दा ख्याल, न जनानां दी लाज"

तत्कालीन अकादमी-अध्यक्ष के विद्वत्ता-पूर्ण प्राक्कथन, अकादमी-उपाध्यक्ष के सूत्र सदृश "श्री अक्खर" मौलूराम की भूमिका और इनके तथा बंशीराम के पांडित्यपूर्ण लेखों ने पहाड़ी भाषा के स्वरुप पर प्रकाश डालकर इस ग्रन्थ की उपादेयता और भी बढ़ा दी है । इस सत्यप्रयत्न के लिए अकादमी तथा इस संग्रह के सम्पादक पं० शिवकुमार साधुवाद के पात्र हैं ।

अनुभूति का दर्द

प्रारम्भ में गौतम व्यथित हिमाचल के साहित्यिक क्षितिज पर पहाड़ी कविता की सबल सिसृक्षा दिल में लिए ऊषा की पहली - रूपहली किरण की भांती उदित हुए थे । तब से लेकर इस किरण के आलोक पुंज से निरन्तर परिवृतमान तथा वर्धमान कान्ति छिटकती रही है । पहाड़ी कविता - संग्रह 'चेत्तें' से लेकर अब तक इन्होने अनेक ग्रन्थ-रत्न हिमाचल के साहित्य प्रेमियों को भेंट किए हैं । इनमें दो लोक-गीत-संग्रह, चार लोक-कथा-संग्रह तथा 'पुंगरासां' नाम से एक कविता सग्रह शामिल हैं । इसके अतिरिक्त गौतम व्यथित ने नैशनल बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ 'हिमाचल प्रदेश लोक संस्कृति और साहित्य' में इस राज्य की संस्कृति तथा साहित्य का सारगर्भित एवं गहन अध्ययन प्रस्तुत किया है । इन्होंने तीन ग्रन्थों का सम्पादन भी किया है । और ... ... और अब हिमाचल के साहित्यिक दस्तावेजों का यह जाना पहचाना हस्ताक्षर 'अनुभूति का दर्द' इनकी हिन्दी कविताओं का संकलन है । कविताओं का कथ्य आज का परिवेश है जिसमें आस्थाओं का स्खलन' मूल्यों का क्षरण तथा निराशा की निशा का कलमुंहा आवरण सभी को कचोर रहा है ... ... और व्यथित का कथ्य है तनाव, सृजन विनाश का, शकुनी व्यवस्था, प्रदर्शन की खूंटी से लटका शरीर, चापलूसी, झूठ, फरेब, धोखेबाजी, अर्थसत्य का दंश, बनावटी जीवन के ग्लैमर का सम्मोहन, सतही विज्ञापन पर आवृत-आश्रित मूल्य-बोध अस्तित्व सभी कुछ है । कवि सोचता है :-

सोचता हूं ! मरा हूं या जीवित ?
मेरा अस्तित्व, मर्यादा, सम्बन्ध
कुछ भी तो शेष नहीं ।
मैं पत्थर हूं चौराहे का
सभीं दिशाओं से खा रहा ठोकरें निरन्तर
दमन, घृणा, विरौध निगलता ।

संवेदन और संत्रास की सिण्ड्रोमी का चित्रण नोंचता है । पाठक को भी सहसा, रमसा :-

भय एवं संत्रास से देखता आवाक्
स्नेह एवं समता की भीख मांगता
भूख और प्यास में पलता
इच्छा एवं आवश्यकता की हत्या करता
कब तक सन्धि करता रहेगा भविष्य ।

वस्तुत; भविष्य का खण्ड-खण्ड खंडहर है, वह अवसाद और निराशा तो उगलेगा ही ! कवि हृदय सहज ही खीजता है यह देखकर कि :-

सरक रहा गोवर्धन प्रतिहिंसा का ब्रज पर
चूर चूर हो जाएगी तुम्हारी लीला - स्थली
खण्ड-खण्ड आस्था ! तार - तार परम्परा ।
मर्यादा समरभूमि में
पुनः उदास है अर्जुन
युधिष्ठर का सत्य टूट रहा ।
बल पकड़ता दुर्योधन का पक्ष
बोल बाला है
शकुनी व्यवस्था का ।

कवि पाता है कि :-

ज़हर - ज़हर - ज़हर
चारों ओर, सब जगह
व्यक्ति व्यक्ति में, बात बात में
ज़हर ही ज़हर फैल गया है ।

मानव के अग जग में, रग रग में फैला यह सांघातिक कालकूट मानव के लिए एक विषय स्थिति पैदा करता है जिससे लगता है कि 'मेरा मैं मरा नहीं । जबकि जीवन व्यर्थ लगता है । " और गुहार पुकार सुनने को कोई भी नहीं । इसीसे फूटता हैं 'निर्वेद का झरना ।'

अस्तित्ववाद के इस त्रासद, एकच्छत्र वातावरण से तनिक परे हटकर 'नव विहान के अभिनन्दन' का एक हिलता फिसलता प्रयास है 'घटना के विषपात्र' में, लेकिन जीवन मिट्टी का दर्शन बिलकुल इस लीक से दूर हटकर है । यह अभिनव चिन्तन-कोण दर्शनीय है इन पंक्तियों में :-

जीवन मिट्टी, मिट्टी जीवन
दोनों चिरन्तन, दोनों सत्य
दोनों नए सन्दर्भों की गवेषणा में
बनते प्रेरक परस्पर
दृढ़तर होते उम्मीद के सेतु ।

इन कविताओं में मछुए, विज्ञापन आदि प्रतीकों का सुन्दर प्रयोग हुआ है । बिम्ब-विधान भी कवि का कुछ अनूप है । इस कवितांश में नेत्र-ग्राह्य बिम्ब लालित्य की अच्छी विच्छित्ति है :-

गर्म आसमान में
बादल के टुकड़े
छप्पड़ में उमड़ती नहाती चिड़ियां
घर-आंगन की हथेली पर मंडराते पताजी
खेत की मेंडों पर मेंढकों की सभा
जीवन को टुकर टुकर देखता तोता।

बड़ी तो उमदा हैं ही। पर यह लघु कविता अपने भाव-लाघव एवं च शब्द-सौष्ठव के कारण एकदम दिल में उतर जाती है :-

मुझें जब भी
जीने का अहसास हुआ
तभी समय ने
मेरे नीचे से
कुर्सी सरका ली।

पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कविताएं :

जिस दिन मुझे 'अनुभूति का दर्द' मिली थी, उसी दिन मेरे हाथों में आई थी **'पं० चण्द्र-धर शर्मा गुलेरी की कविताएं,** यह नाम है गुलेरी की कतिपय कविताओं के संकलन का जिसे उनके पौत्र विद्याधर द्वारा सम्पादित करके कुछ मास पूर्व ही प्रकाश में लाया गया है। **'उसने कहा था,**के अमर लेखक के रूप में गुलेरी को निःसन्देह सकल हिन्दी जगत जानता है। **'बूद्धू का कांटा,** और **'सुखमय जीवन,** के प्रणेता के रूप में भी शायद साहित्य-प्रेमी चन्द्रधर शर्मा से परिचित हैं, परन्तु इसके साथ ही गुलेरी के कर्तव्य के इर्द गिर्द परिचित-अपरिचित की परिचायक स्थूल लक्ष्मण-रेखा खिंच जाती है। अधिकांश साहित्य प्रेमी इन तथ्यों से अपरिचित हैं कि कांगड़ा जिले के गुलेर गांव से संबद्ध चन्द्रधर शर्मा गुलेरी एक महान निबन्धकार, अपने युग के अंग्रेजी भाषान्तरकार, धुरन्धर समालोचक, संस्कृत के अप्रतिम विद्वान अथा असाधारण पुरातत्त्ववेता थे। प्राच्य तथा प्रातीच्य दोनों प्रकार की भाषाओं और संस्कृतियों के गम्भीर अध्येता होने के कारण गुलेरी की वाणी में समन्वय का स्वर स्पष्ट था। गुलेरी के व्यक्तित्व के कवि पक्ष से प्रायः लोग अपरिचित हैं, परन्तु प्रस्तुत पुस्तक से यह पक्ष स्पष्ट उभर कर सामने आता है। चन्द्रधर शर्मा ने हिन्दी, ब्रज तथा संस्कृत की अच्छ्ती कविताएं लिखीं। उनकी कविताओं में हरिऔध की तरह श्लिष्ट कलिष्ट भाषा मिलती है। इसका एक उदाहरण हैं उनकी कविता **'रवि,** जिसे पूर्ण रूपेण समझना ज्योतिष के ज्ञान के बिना असम्भव सा प्रतीत होता हैं। साथ ही कुछ कविताओं के सरल प्राँमल भाषा का उपयोग भीं हुआ है। सरल-सरल भाषा के लिए उनकी एक संस्कृत-कविता की ये पंक्तियां देखिए :-

जयतु जयतु राजा पंचमों जार्जनामा
जयतु जयतु राज्ञी सापि मेरी वदान्या
जयतु जयतु ताभ्यां त्रात एवार्यधर्मो
जयतु जयतु नवृद भारतानां पुराणः

इस कवितांश को सुनने-पढ़ने से कहीं भ्रम उत्पन्न न हो जाए, अतः हम यह उद्घोषणा करना जरूरी समझते हैं कि गुलेरी की कविताओं में राष्ट्रीयतातथा स्वतन्त्रता काशंखनाद सुव्यक्त है। उदाहरण के लिए इन पंक्तियो पर ध्यान दीजिए :-

छोड़ो अधूरा अब यज्ञ ब्रह्मन्
वेदान्त परायण को विसारने।
विदेश ही का बलिवैश्वदेव,
औ तर्पणों में रिपु रक्त डारो
शस्त्रार्थ शास्त्रार्थ गिनो अभी से
चल दिखाओ हम अग्रजन्मा !

'वन्दे प्रियां मातरम्' का ओजस्वी मन्त्र-गान भी इस भाव का अचूक प्रमाण है। स्वनाम धन्य चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का जन्म ७ जुलाई १८८३ ई० को हुआ था। अतः विद्याधर गुलेरी ने अपने समयोपयुक्त प्रयास से गुलेरी कवि-पक्ष को उद्घाटित करके उनके विशाल प्रशंसक परिवार को उपकृत किया है। आशा है इस दिग्गज साहित्यकार के जन्म शताब्दी वर्ष के दौरान इसके द्वारा या इसके विषय में प्रणति बहुत कुछ पढ़ने सुनने को मिलेगा।

श्रम आयुक्त,
हिमाचल प्रदेश, शिमला।

H.A.A.C.L. आर० एम० 28271/75

१. निदेशक शिक्षा विभाग, हि० प्र० द्वारा पत्रांक ई डी ऐन-एच (8)-6 (3) 1/75, 24 फरवरी, 1975 के अनुसार प्रदेश के समस्त कालेजों, पाठशालाओं व जिला पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

२. प्रदेश की समस्त पंचायतों के लिए निदेशक, पंचायती राज विभाग, हिमाचल प्रदेश सरकार द्वारा स्वीकृत ।

हिमाचल कला-संस्कृति भाषा अकादमी, क्लिफ-एन-डी एस्टेट, शिमला द्वारा प्रसारित तथा
"सन-साईन प्रिंटिंग प्रैस, टूटू शिमला-११ (हिमाचल प्रदेश) द्वारा मुद्रित ।